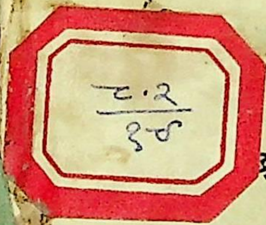
साहित्य सरोजमाला सं०—८

हजामत

(हास्य-रस से पूर्ण आठ मौलिक प्रहसनों का संग्रह)

लेखक
ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
(सम्पादक 'देशदूत')





प्रकाशक
छात्र हितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग।

प्रथम संस्करण १५०० | नवम्बर १९३९ | मूल्य १)

प्रकाशक

केदारनाथ गुप्त एम० ए०

प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला,

दारागंज, प्रयाग।



मुद्रक

श्री रघुनाथप्रसाद वर्मा,

नागरी प्रेस, दारागंज,

प्रयाग।

भूमिका

हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों की पुष्टि के लिए अनेकानेक और सुन्दर से सुन्दर ग्रन्थों का प्रणयन हो रहा है और अब यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी का साहित्य किसी भी प्राचीन तथा प्रगतिशील साहित्य की समता का नहीं है। काव्य, उपन्यास, कहानी, इतिहास तथा आलोचना-साहित्य के उच्च से उच्च ग्रन्थ हिन्दी में उपलब्ध हैं। अन्यान्य विषयों के श्रेष्ठ ग्रन्थों का भी अभाव नहीं है। किन्तु दुःख की बात है कि नाटक साहित्य के सृजन तथा प्रणयन की ओर हमारे साहित्यकारों ने अभी उतना ध्यान नहीं दिया जितनी कि आवश्यकता थी और आजकल है। स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ही एक ऐसे महारथी थे जिन्होंने अपने जीवन में विशेष रूप से नाट्य-साहित्य का ही सृजन किया था और उनके ग्रन्थों द्वारा हिन्दी के इस अभाव की बहुत अंशों में पूर्ति हुई है। इनके बाद लाला श्रीनिवास दास, राय देवी प्रसाद 'पूर्ण', लाला सीताराम, ठाकुर लक्ष्मण सिंह, श्री राधाकृष्ण दास आदि ने भी नाटकों की सृष्टि की थी। इसके बाद नाट्य-साहित्य के प्रणयन में परिवर्तन हुआ। पंडित माधव शुक्ल, पंडित बदरीनाथ भट्ट तथा राधेश्याम कथावाचक ने भी अनेक नाटक लिखे और उनका हिन्दी संसार में स्वागत हुआ। आजकल के नाटककारों में स्वर्गीय बाबू जयशंकर प्रसाद ने श्रेष्ठ नाटक लिखे और उनका जो गौरवपूर्ण स्थान हिन्दी संसार में है वह किसी से छिपा नहीं है। आधुनिक नाटककारों में पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट और श्रीजगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' का श्रेष्ठ स्थान है। श्रीयुत हरिकृष्ण प्रेमी ने भी कई सुन्दर नाटक लिखे हैं। इन साहित्य-सेवियों ने नाट्य-साहित्य के अभाव की बहुत कुछ पूर्ति की है। लेकिन हास्यपूर्ण प्रहसनों के लेखकों का आधुनिक काल में एक दम अभाव सा रहा है।

हास्यपूर्ण प्रहसन लिखना भी एक दुसह कार्य है। इस मार्ग को प्रशस्त करने वालों में श्री जी० पी० श्रीवास्तव और पंडित बदरीनाथ

भट्ट का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। यद्यपि श्री अन्नपूर्णानन्द, श्री 'बेढब' बनारसी, श्री 'चोंच' तथा पंडित हरिशंकर शर्मा ने हास्य-पूर्ण कहानियाँ लिखी हैं, और उनका विशेष स्थान भी है किन्तु प्रहसन रचयिताओं में उनकी गणना नहीं की जा सकती। श्री जी० पी० श्रीवास्तव और स्वर्गीय भट्ट जी ने इस अभाव की जबरदस्त पूर्ति की है और प्रहसन लिखने वालों में उनका नाम अमर है।

ऐसी दशा में मेरे ऐसे साधारण लेखक का, प्रहसन लिखने वालों में, गणना करना हास्यास्पद ही है। किन्तु मैंने अपनी इस पुस्तक में जिन प्रहसनों को एकत्रित किया है वे हास्यरस से परिपूर्ण तो हैं ही, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। इन प्रहसनों की सफलता या असफलता मैं पाठकों के ऊपर ही छोड़ता हूँ। इनमें प्रायः एक ही 'करेक्टर' मिलेगा। विभिन्न स्थानों में वही नायक का कार्य करता है। मेरी इच्छा है कि मैं और भी विविध करेक्टरों से पूर्ण प्रहसनों के लिखने का प्रयास करूँ। और संभवत: मेरी अगली पुस्तक इन प्रहसनों से भिन्न वातावरण को उपस्थित करेगी। इसलिये मैं नम्रता-पूर्वक हिन्दी साहित्य सेवियों और प्रेमियों से अनुरोध करूँगा कि वे उन प्रहसनों को पढ़ें और यदि इनमें दोष हों— जहाँ तक मैं समझता हूँ होंगे ही—तो उन्हें मुझे बतलाने की कृपा करें। इससे मुझे आगे लिखने में सुविधा मिलेगी; यदि पाठकों तथा साहित्य प्रेमियों को 'हजामत' पसंद आई तो मैं शीघ्र ही अपनी दूसरी कृति भेंट करने का साहस कर सकूँगा। अंत में मैं पंडित गणेश पाण्डेय का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशित करने का श्रम उठाया और हिन्दी संसार के सामने उपस्थित किया।

कटरा प्रयाग, विनीत

१९-११-३९ ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

विषय-सूची

हजामत

पहला दृश्य

स्थान—मकान का बरांडा

(मुंशी हुरमतराय बरांडे में मसनद लगाये बैठे हैं। मकान कुछ पक्का और कुछ कच्चा है। आगे खपरैलों से छाया हुआ उसारा है। बैठे हुए सिर नीचा करके कुछ सोच रहे हैं। कभी उठकर टहलने लगते हैं, कभी बैठ जाते हैं)

हुरमत (अपने आप)—ओहो, दोपहर हो रहा है। सूरज चाँद पर तीर सीधा ही करनेवाला है। आज काम किस प्रकार समाप्त होगा? (उठकर टहलता हुआ) जिन्दगी व्यर्थ है, न जिमीं

का न आसमान का ! (दाढ़ी पर हाथ लगा कर) अरे, बाल रात ही भर में इतने बढ़ गये ? कल काफ़ी छोटे थे ! सिर्फ़ बारह घंटे में इनके बढ़ने की रफ़्तार इतनी तेज़ हो गई ? (बैठकर) अच्छी बात है, आज तो बाल बनवा ही डालना होगा। (उठकर टहलते हुए) नहीं, नहीं, अभी बहुत काम करना है, क्या जल्दी है ? आज न सही कल, बाल कुछ बढ़ ही जायेंगे तो हर्ज हो क्या है ? (बैठकर दाढ़ी का एक बाल नोचकर) अरे, यह तो बहुत ही बेजा है, आज अवश्य ही इन बालों को मुँड़ा कर ही दम लूँगा। यह भी मेरे पीछे पड़ गये ? इनका मैंने क्या बिगाड़ा है ? (उठ कर और बाहर की ओर देख कर) ऐं, यह भीड़ किधर जा रही है ? स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध कहाँ गोल बनाये चले जा रहे हैं ? अवश्य ही आज कोई दैवी घटना घटित हो गई है। (इधर-उधर टहलने लगता है और ज़ोर से पुकारता है) कल्लू, ओ कल्लू, जल्दी आ जल्दी। (अपने-आप) ओहो, आज निश्चय ही कहीं हंगामा हो गया है। पता लगाना चाहिए; (दाढ़ी खुजलाते हुए) इन बालों के मारे परेशान हो गया हूँ। आज इनकी सफ़ाई कराये बिना न मानूँगा। आज या तो ये हैं या मैं। (गर्दन उठा कर पुकारता है) कल्लू, कल्लू, ओ कल्लू, कहाँ छिपा बैठा है ? (बड़बड़ाता हुआ) इस नौकर से परेशान हो गया हूँ, न-जाने क्यों यह भी मेरे गले पड़ा है ! जब देखो तब ग़ायब रहता है ! क्या करता है कहाँ रहता है, कुछ समझ में नहीं आता। अच्छा ठहर, तुझे भी अब धता

बताता हूँ । (मुँह ऊपर करके चिल्लाता है) कल्लू, ओ कल्लू के बच्चे, अरे दौड़-दौड़, हाय ! हाय !! अरे दौड़-दौड़ । (क्रोध में) अरे, बोलता क्यों नहीं, तू अपने को समझता क्या है ? मैं कौन हूँ, तू किसका नौकर है, कल्लू ओ कल्लू !!

(कल्लू का प्रवेश)

कल्लू (गिड़गिड़ाकर और हाथ जोड़कर)—जी हुजूर !

हुरमत (क्रोध में घूँसा तानकर) कहाँ मर गया था ? मैं घंटे भर से परेशान हूँ । जानता नहीं, हंगामा हो गया ? लाखों आदमी चले जा रहे हैं । पाजी कहीं का । (अपने-आप) नमक-हराम, पागल, फ़रेबी !

कल्लू—जी हुज़ूर !

हुरमत (क्रोध में) देखता नहीं, बाल बढ़ते जा रहे हैं । दाढ़ी खुरखुरी हो रही है । चिकनाहट का नाम नहीं रह गया ।

कल्लू—जी हुजूर !

हुरमत (टहलता हुआ) परेशानी से घबरा गया हूँ । काम अभी इतना करना है कि क्या कहूँ । देखो न, ईश्वर की लीला, हंगामा एक ओर हो गया, दाढ़ी दूसरी ओर कमर कसे तैयार ! अजीब कशमकश है दिमाग़ ख़राब हो रहा है ।

कल्लू—जी हुज़ूर, बिलकुल ठीक कहते हैं ।

हुरमत—बिलकुल ठीक तो है ही । कहने की कौन-सी बात है । दाढ़ी बढ़ती जा रही है, हंगामा बैठे-बैठाये हो गया (टहलता है) ।

कल्लू—जी हुजूर, दाढ़ी अलग बढ़ गई, हंगामा अलग हो गया।

हुरमत (क्रोध में) क्या बकता है ? जरा तमीज़ से जवाब दिया कर। दाढ़ी भी बढ़ रही है और हंगामा भी हो गया, क्या-क्या करूँ; कहाँ-कहाँ जाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता। (टहलता है)

कल्लू—जी हुजूर! बिलकुल ठीक, दाढ़ी भी बढ़ गई, हंगामा भी हो गया।

हुरमत—(कल्लू की ओर दौड़कर क्रोध में) हाँ-हाँ, दाढ़ी भी बढ़ गई, हंगामा भी हो गया, तू समझता क्या है ?

कल्लू—हाँ, हाँ हुजूर! दोनों दो...दो...दो दोनों दाढ़ी हंगामा......

हुरमत (बात काटकर) चुप रह चुप, बस-बस, अब मैं एक हरफ़ तेरे मुँह से नहीं सुनना चाहता। (अपने-आप) इसको न मेरी फ़िक्र, न दुनिया की। चला है कहीं का अफ़लातून! (डाँटकर) जा जल्दी, पता लगा दोनों का।

कल्लू—जी हुजूर, दोनों का पता लगाऊँ। जी हुजूर!

हुरमत (क्रोध में)—समझता क्या है दोनों, दोनों, जल्दी जा।

कल्लू—जी हुजूर! दोनों, दोनों, दोनों, जल्दी जा।

हुरमत—निकल यहाँ से नालायक़, तूने अपने को समझ

क्या रक्खा है ? जल्दी जा, दोनों का पता लगा। तू मुझे समझता क्या है ?

कल्लू—जी हुज़ूर !

हुरमत (लपककर) दोनों का पता लगा, दोनों, दोनों दोनों !!

कल्लू (बाहर की ओर जाता हुआ) दोनों-दोनों-दोनों, पता लगा दोनों (सड़क पर जाकर) दोनों, दोनों, पता लगा दोनों दोनों, दोनों।

(मुन्शी हुरमतराय के मित्र रामानन्द का प्रवेश)

रामानन्द—(आश्चर्य से कल्लू की ओर देखकर) क्या हुआ कल्लू ?

कल्लू—हाँ, हाँ भूल गया हुज़ूर ! बिल्कुल ठीक, पता लगा दोनों ! दोनों, दोनों दोनों !

रामानन्द (कंधे पर हाथ रखकर) क्या बकता है कल्लू, पागल तो नहीं हो गया ?

कल्लू (भावभंगी से) हुँ, बिल्कुल ठीक, दोनों, दोनों, दोनों। पता लगा।

रामानन्द (आगे बढ़ता हुआ) आख़िर मामला क्या है ? आज फिर जान पड़ता है मुन्शी जी का दिमाग़ गरम हो गया है।

(हुरमत इधर-उधर टहलता है)

हुरमत—कितना वाहियात नौकर है, अभी तक नहीं वापस

आया। मैं दोनों काम कैसे सँभालूँ। बाल बढ़ रहे हैं, हंगामे ने आफ़त ढा दी है। (दाँत पीसकर) आख़िर यह दोनों एक ही साथ क्यों मुझे परेशान कर रहे है। इसी वक्त हंगामा भी कूद पड़ा। आफ़त है आफ़त। दोनों एक साथ हो आ गये।

रामानन्द (पास आकर) मुन्शी जी, सलाम।

हुरमत (टहलता हुआ) हो हो, ईश्वर भी कैसा विचित्र है। लाखों आदमी परेशान होकर भागे जा रहे हैं, कल्लू का कहीं पता ही नहीं। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। (हाथ मलता हुआ टहलता है)।

रामानन्द (मुसकिरा कर) ज़रा मेरी ओर भी दया-दृष्टि कीजिए। मैं आपका सेवक रामानन्द हूँ।

हुरमत (झोंक में) हूँ, आज इन दोनों का फ़ैसला करना ही पड़ेगा। पूरब और पश्चिम का मेल नहीं हो सकता। (सिर ऊपर उठाकर) कल्लू, ओ कल्लू! (रामानन्द को देखकर) अरे, रामू, तुम यहाँ कब आये। बोलते भी नहीं हो? दोनों ने परेशान कर डाला है। (टहलने लगता है)

रामानन्द (मुसकिराकर) मुन्शीजी, मैं तो काफ़ी देर से आया हूँ। हाँ, हाँ, सुनिए आख़िर इतनी दाढ़ी क्यों बढ़ा रक्खी है?

हुरमत (दाढ़ी पर हाथ लगाकर) अच्छा, बहुत बढ़ गई है? हाँ, हाँ, तुमने सुना, हंगामा हो गया? लाखों आदमी भागे जा रहे हैं। अफ़सोस! (हाथ मलता है)

रामानन्द—(आश्चर्य से)—हंगामा, हंगामा कैसा ?

हुरमत—चुप रहो, चुप, क्यों आये यहाँ जाओ। जानते नहीं दाढ़ी बढ़ गई और हंगामा ज़ोर पकड़ रहा है ?

रामानन्द (मुसकिराकर) मुन्शीजी, दाढ़ी तो बढ़ी हुई नज़र आ रही है, लेकिन हंगामे का कुछ भी पता नहीं।

हुरमत (नाराज़ होकर) आँखों की दवा कराओ, डाक्टर को दिखाओ, चश्मा लगाओ, लाखों आदमी चले जा रहे हैं, हंगामे का पता ही नहीं। ताज्जुब की बात है !

रामानन्द (कुछ सोचकर) अच्छा, समझ में आ रहा है और......

हुरमत (उँगली का इशारा करके) देखो, आँखें खोलकर देखो, हज़ारों लोग कहाँ चले जा रहे हैं ? फ़िसाद ज़ोर पकड़ रहा है। ईश्वर जाने क्या होगा ?

(रामानन्द ज़ोर से हँसता है और भीड़ की ओर देखकर फिर हँसता है)

हुरमत—अच्छा, अच्छा, हँसने की कौन-सी बात है ? यहाँ नाटक-तमाशा और नौटंकी नहीं हो रही है। लोगों के जोखिम का समय है। लज्जा आनी चाहिए। हुँ, दाँत निकाल दिए ! (धीरे से) बेशर्म !

रामानन्द (हँसकर) मैंने ख़ूब समझ लिया, हंगामा हो गया। (ज़ोर से हँसता है)

हुरमत—हाँ, हाँ, हाँ, हो गया, हो गया, उसे तो होना ही था, सो हो भी गया। क्यों न हो। होना ही चाहिए, हुँ...

रामानन्द—आप जानते नहीं, आज त्रिवेणी-तट पर स्नान-दिवस है। मौनी अमावास्या है। लाखों व्यक्ति स्नान करने जा रहे हैं। (हँसता है)

हुरमत—झूठ, झूठ, सरासर झूठ ! इतने आदमी क्या एक साथ ही स्नान करेंगे ? हंगामा तो होना ही था। बात बना रहे हो। जान छुड़ाते हो ?

रामानन्द (आगे बढ़कर) मुन्शीजी, आप के सिर की सौगन्ध। अमावस्या है। लोग स्नान करने जा रहे हैं। यह भीड़ स्नान करनेवालों की है।

हुरमत (आश्चर्य से) अच्छा, क्या तुम सच कहते हो (रामानन्द के कन्धे पर हाथ रखकर) ख़ैर शुक्र है, ईश्वर की माया निराली है। एक काम से तो छुटकारा मिला। बैठो, बैठो, आज बच गया। नहीं तो बड़ी चिन्ता में पड़ गया था।

रामानन्द (बैठकर) आज आप भी स्नान करने चलिए। मैं इसीलिए आया हूँ और वहीं पर बाल......

हुरमत (आश्चर्य से) बाल क्या ? जल्दी कहो, अभी क्या कह रहे थे ?

रामानन्द—यही कि आज स्नान के पहले बाल बनवा डालिए।

हुरमत (प्रसन्न होकर)—हाँ बाल जरूर साफ़ होने चाहिए। लेकिन स्नान के पहले, क्या मतलब ?

रामानन्द—आज का स्नान करना एक पुण्य है और बाल बनवाना दूसरा।

हुरमत—पुण्य, पुण्य क्या है ? अच्छा पुण्य ही सही, लेकिन एक पुण्य काफ़ी है। इतने पुण्य एक साथ लेकर क्या करूँगा ?

रामानन्द—पुण्य मिले तो क्यों छोड़ा जाय। आज डबल पुण्य लीजिए, मुण्डन और स्नान, दोनों साथ ही हों।

हुरमत (हाथ पकड़कर) बस-बस, रहने दीजिए। एक ही पुण्य काफ़ी है। पुण्य को क्यों व्यर्थ बरबाद किया जाय। किसी और के काम आ जायगा। पुण्य से तबियत भर गई है।

रामानन्द—अच्छा चलिए स्नान करने। देर हो गई है। वहीं सब ठीक हो जायगा।

हुरमत—एँ, ठीक हो जायगा ! क्या ठीक हो जायगा ? हंगामे से पीछा छूट गया। बालों के मैं सख़्त ख़िलाफ़ हूँ। अपने चेहरे पर मैं इनका नाम-निशान नहीं रहने देना चाहता। बड़े नीच हैं।

रामानन्द—(मुसकिरा कर) हाँ, हाँ अवश्य, बड़े ही दुष्ट हैं। मुँह बिगाड़ दिया है। (उठकर) अच्छा जल्दी कीजिए। मैं सब ठीक कर दूँगा। घबराने की बात नहीं।

हुरमत—मैं घबराता तो बड़े-बड़ों से नहीं हूँ। ठीक भी कितनों को कर दिया। फिर बाल किस खेत की मूली हैं।

रामानन्द—आप वीर पुरुष हैं, शेर हैं, प्रतापी हैं। आपके सामने भला बालों की क्या बिसात !

हुरमत (ओज से)—हाँ, हाँ, बालों की क्या बिसात। मैं आज उनकी सफ़ाई कर दूँगा। हर्गिज़ नहीं मानूँगा। लाख कोई समझाये, लेकिन कान में उँगली लगा लूँगा। इन बालों ने मुझे समझ क्या रक्खा है ?

रामानन्द—अच्छा चलिए, मैं सब वहाँ ठीक कर दूँगा।

हुरमत—हाँ-हाँ, ठीक तो है ही। बिलकुल ठीक है। इन बालों ने मुझे निरा मूर्ख समझ रक्खा है। आज मैं इनको देख लूँगा।

रामानन्द—हाँ, हाँ बस चल दीजिए।

(मुंशी हुरमत राय और रामानन्द धोती - अँगोछा लेकर स्नान करने के लिए त्रिवेणी - तट पर पैदल चल देते हैं।)

दूसरा दृश्य

स्थान—त्रिवेणी-संगम में नाव पर

(मुंशी हुरमतराय और रामानन्द बैठे हैं। चार-पाँच अन्य स्नानार्थी भी हैं। रामानन्द की दो सहपाठिनी कालेज की छात्राएँ भी हैं। नाववाला नाव चला रहा है।)

एक व्यक्ति—पंडित जी की दाढ़ी बहुत बढ़ गई है।

हुरमत (दाढ़ी में हाथ लगाकर) इससे तुमसे क्या मत-

लब ? दाढ़ी मेरी बढ़ गई है या तुम्हारी। (क्रोध में भौंहें टेढ़ी करता है)

दूसरा—(हँसकर) वाह साहब, हम लोगों से कुछ मतलब ही नहीं। एक नाव पर बैठे हैं। हमें अच्छा नहीं मालूम होता कि आपकी दाढ़ी बेक़ायदा बढ़ी रहे।

हुरमत—नहीं अच्छी मालूम होती न सही। तुम्हें क्या मालूम कि मैंने दाढ़ी क्यों बढ़ा रक्खी है ?

पहला—अच्छा तो क्या इसमें भी कोई राज़ है ?

हुरमत (नाराज़ होकर) राज़ नहीं है, तो क्या मैं बेवक़ूफ़ हूँ ! दुनिया में कोई काम ऐसा नहीं है जो राज़ से खाली हो।

रामानन्द (लड़कियों की ओर देखकर) हाँ, कुछ मामला तो ऐसा ही है।

एक छात्रा (दूसरी के कान में) पूरा उजबक मालूम होता है। देखो, ज़रा ग़ौर से इसकी सूरत-शकल। माँद से निकला है अभी-अभी।

दूसरी (धीरे से)—उजबक तो है ही, साथ ही कुछ सनकी भी जान पड़ता है। (दोनों मुसकराती हैं)

हुरमत (रामानन्द से) एं, ये लड़कियाँ कौन हैं ? क्या तुम्हारे साथ हैं ? (भावभंगी से) भला, इन लोगों की हम पुरुषों के बीच में क्या आवश्यकता थी ?

रामानन्द (मुसकराकर) ये मेरी सहपाठिनियाँ हैं। ये भी स्नान करना चाहती हैं।

हुरमत (नाराज़ होकर) तो क्या इन लोगों को दूसरी नाव में जगह नहीं थी ? (दाढ़ी पर हाथ लगाकर) पुरुष और स्त्री का साथ रूई और आग का साथ है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि नये विचारवालों का अभी तक दिमाग़ दुरुस्त नहीं हुआ।

रामानन्द (हँसकर) यहाँ आग और रुई कोई भी नहीं है। नाव के पैसे दिये गये हैं। सभी बैठ सकते हैं।

हुरमत (नाराज़ हो) जब पैसा ही देना था, तो क्या और नावें न थीं ! मैं इस मेल-मिलाप के सख्त ख़िलाफ़ हूँ। मैं नहीं चाहता कि मेरे साथ कोई स्त्री बैठी हुई स्नान करे।

एक छात्र (धीरे से दूसरी से)—क्यों नहीं, बड़े ख़ूबसूरत हो न ! हाथ-हाथ भर की दाढ़ी में ख़ूबसूरती छिप गई है। (दूसरी हुरमत की दाढ़ी की ओर देखकर मुसकिराती है)

हुरमत (दूसरी छात्रा को देखकर) मैं हर्गिज़ इस नाव पर नहीं चल सकता। मैं इसी स्थान पर उतरूँगा। चाहे जो कुछ भी हो, मैं माननेवाला नहीं। (नाववाले को पुकारकर) नाव रोक दे, बस बस,(रामानन्द से) ऐं ये लड़कियाँ मुझे देखकर हँसती हैं। हुँ, इन लोगों ने मुझे क्या समझ रक्खा है ?

रामानन्द (रोककर) नहीं, नहीं, मुन्शीजी, ऐसा अंधेर न कीजिए। यहाँ कहाँ उतरिएगा। पानी है।

हुरमत (क्रोध में) वाह मैं ज़रूर उतरूँगा। पानी से मैं

डरनेवाला नहीं हूँ । तुम लोगों ने समझ क्या रक्खा है ! मैं अभी चाहूँ तो पूरी जमना तैर जाऊँ ।

एक छात्रा (दूसरी से) अच्छा तैरना भी आप जानते हैं ! लेकिन लम्बी दाढ़ी अटक जायगी तब ! (दोनों हँसती हैं)

हुरमत (देखकर) अच्छा, ये न मानेंगी । मैं रुकने वाला नहीं । इनकी यह हिमम्त कि मुझे देखकर हँसें । मैं तो इसीलिए स्त्री-जाति के विरुद्ध हूँ ।

दूसरी छात्रा (धीरेसे)—बड़ा दिलेर है । अपना मुँह नहीं देखता । चला है जमना पार करने । (हँसती हैं)

हुरमत (लड़कियों को देखकर) बस, बस बहुत हो चुका । या तो यही लोग नाव पर रहेंगी या मैं ही । मैं इनके साथ स्नान हर्गिज़ नहीं कर सकता । मैं ऐसा-वैसा नहीं हूँ । अकेले जाऊँगा । (नाववाले से) रोक दे नाव, बस मैं तो इसी जगह उतरूँगा ।

नाववाला—सरकार ! यहाँ कहाँ उतरिएगा, अथाह पानी हैं ।

हुरमत—बस, बस, रोक दे, तू भी इन लोगों से मिला हुआ है । मैं पानी-वानी की परवा नहीं करता । जब उतरना ही है तो पानी मेरा क्या कर लेगा ?

नाववाला— नहीं हुजूर, डूब जाइएगा ।

हुरमत (नाराज़ होकर) मैं यही उतरूँगा । ये बातें मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता । पानी मेरा क्या कर लेगा । जब मैं पानी पर चल रहा हूँ, तो क्या तैर नहीं सकता ? बस, रोक दे नाव ! इन लोगों ने मुझे समझ क्या रक्खा है ?

(सब लोग एकाएक ज़ोर से हँस पड़ते हैं ।)

हुरमत (नाववाले का गला पकड़ कर) तू भी नहीं सुनता। कहता हूँ, रोक दे, मैं अभी इन लोगों की हँसी बन्द कराये देता हूँ। (दाढ़ी पर हाथ रखकर) इस दाढ़ी ने आज मेरी इज्जत ले ली। नहीं, इन लोगों की क्या बिसात थी, जो हँसते। रोक दे बस। (डाँड़ पकड़ता है)

नाववाला—आप तो हुजूर, बड़े बेढब हैं। डूब जायँगे तो कौन ज़िम्मेवार होगा ?

हुरमत (क्रोध में) डूब जाऊँगा तो मैं डूबूँगा। इसमें किसी का क्या इजारा ! आज मेरे भाग्य में यही बदा है।

एक छात्रा (दूसरी के कान में) हमें भी अपने साथ डूबने के लिए लेते चलो।

दूसरी (धीरे से) मैं तो दाढ़ी के बाल पकड़ कर जमना पार हो जाऊँगी।

हुरमत (क्रोध में) बस, बस, अब मैं रुकनेवाला नहीं। देखता हूँ कौन रोकता है। (सब को हाथ का इशारा करके) खूब हँसो, पेट भर हँस लो। इसीलिए मैं स्नान करने नहीं आ रहा था। (रामानन्द का गला पकड़कर) क्यों, मुझे तू यहाँ लाया ? ले अब देख, मैं यही कूद पड़ूँगा। जान दे दूँगा।

(हुरमत खड़ा होकर कूदना चाहता है । रामानन्द और बैठे हुए स्नानार्थी 'हाँ' 'हाँ' कहकर रोकते और उसे पकड़ लेते हैं)

रामानन्द (आश्चर्य से) मुन्शीजी, यह बड़ी बेजा बात है। बैठिए, बैठिए। नहीं, मालूम था कि हँसी-हँसी में आप जान की बाजी लगा देंगे ?

हुरमत (क्रोध में) तो तुम लोगों ने मुझे समझ क्या रक्खा है ? दाढ़ी-दाढ़ी-दाढ़ी ! नाक में दम कर दिया। हज़ारों साधु दाढ़ी रखाये घूम रहे हैं, उन्हें देखकर क्यों नहीं हँसते ?

एक व्यक्ति—महाराज उनके चिमटों से डर लगता है।

हुरमत—अच्छा, तो मेरे पास चिमटा नहीं है, इसीलिए मेरा मज़ाक उड़ाया जाता है। आज मैं भी एक चिमटा ख़रीदूँगा।

रामानन्द (सबको रोककर) अच्छा अब शान्त हो जाइए। दिमाग़ ठंडा कीजिए, थोड़ी काम की बात हो जाय।

हुरमत—नहीं काम-वाम कुछ नहीं। मैं यह बात किसी की नहीं सुन सकता।

रामानन्द—देखिए, आप हैं बुजुर्ग, समझदार और होशियार।

एक छात्र (दूसरे से) हाँ, हाँ पूरा सियार और………।

रामानन्द (बात काटकर) हाँ, हाँ मुन्शीजी, आज दाढ़ी की सफ़ाई करा डालिए। ऐसा मौक़ा हाथ न लगेगा।

हुरमत (दाढ़ी पर हाथ फेर कर) वाह, न-जाने कितने मौक़े आते हैं, रोज़ आते, घंटे-घंटे, मिनट-मिनट पर आते हैं। वह तो तबियत की बात है।

रामानन्द (मुँह बनाकर) हुँ, तब आपको यह नहीं मालूम कि अमावस्या के दिन दाढ़ी मुड़ाने का क्या महत्त्व है ?

हुरमत—महत्त्व-वहत्त्व से मुझे क्या मतलब ! मैं सरेआम दाढ़ी मुड़वाऊँ, यह कौन-सा महत्त्व है ?

रामानन्द—यहाँ तो सारा काम सरेआम होता है। हजारों आदमी एक साथ बैठ कर दाढ़ी मुड़ाते हैं। आपने समझ क्या रक्खा है ?

हुरमत—सरेआम दाढ़ी मुड़ाते हैं, बड़ी बेपर्दगी है।

रामानन्द—जी हाँ, यही तो इस पर्व का महत्त्व है। और यदि आप भी बहती गगा में हाथ धोना चाहते हैं, तो चलिए पहले दाढ़ी मुड़ाइए, तब स्नान कीजिए।

हुरमत—मैं हर्गिज़ ऐसा काम यहाँ नहीं कर सकता।

रामानन्द—दाढ़ी मुड़ाना ही तो आज यहाँ पुण्य का काम है।

हुरमत (आश्वर्य से) पुण्य ?

रामानन्द—हाँ हाँ, पुण्य घोर पुण्य, सौ गायों के संकल्प का पुण्य ! आप समझते भी कुछ हैं ?

हुरमत—और सबके सामने !

रामानन्द—सामने नहीं तो क्या लुक-छिप कर ? चलिए मैं आपको दिखाऊँ रौनक ! हज्जाम दाढ़ी मुड़ाने वालों पर ऐसे टूटते हैं, जैसे ब्रह्मभोज के समय कौवे।

हुरतम (आश्वर्य से) ऐसा ! तब तो कोई खास जगह इसके लिए होगी ?

रामानन्द—ख़ास जगह तो है ही। आपको वहाँ कोई शरम की बात नहीं। वहाँ पहुँचते ही आपकी दाढ़ी साफ़ होने के लिए स्वयं खुजाने लगेगी।

एक छात्रा—हाँ-हाँ, जगह का भी तो असर पड़ता है।

रामानन्द—देखो भई, दाढ़ी मुड़ाने के लिए न ऐसी उत्तम जगह मिलेगी और न ऐसा शुभ मुहुर्त !

हुरमत—अच्छा, मैं तो आश्चर्य में हूँ।

रामानन्द (मुसकिराकर) आश्चर्य की क्या बात है। प्रत्यक्षे किम् प्रमाणं।

हुरमत—अच्छा।

(रामानन्द नाव किनारे लगवाता है और हुरमत राय को लेकर नाईबाड़े में जाता है। स्नानार्थी उतरकर स्नान करने चले जाते है। छात्राएँ नाव पर बैठी रहती हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान— नाई-बाड़ा

(हजारों स्नानार्थी बाल बनवा रहे हैं। नाइयों का झुण्ड पुकार मचा रहा है। बाल बनाने के लिए नाइयों में छीना-झपटी होती है। बालों के ढेर के ढेर चारों ओर पड़े हुए दिखाई देते हैं। मुन्शी हुरमतराय और रामानन्द बाड़े के निकट आते हैं)

रामानन्द (मुंशीजी को दिखाकर) देखिए, सामने, इसका नाम 'नाई-बाड़ा' है। यहाँ नाइयों और बाल बनवाने वालों के सिवा दूसरा नहीं दिखाई देता।

हुरमत (आश्चर्य से) हाँ, है तो यह विचित्र स्थान । सभी बाल बनवा रहे हैं।

रामानन्द—बस आप भी जल्दी कीजिए, बाल बनवा ही डालिए।

(इतने में नाइयों का एक झुण्ड दोनों के पास आ जाता है और बाल बनवाने का आग्रह करता है ।)

एक नाई—आइए सरकार, बाल बनवाइए । क्षेत्र में पुण्य काम है।

दूसरा—मुझसे बनवाइए सरकार ! मैं बहुत अच्छी सफ़ाई करता हूँ।

हुरमत (आश्चर्य से) एँ, सिर्फ़ एक दाढ़ी के लिए इतने नाई । ये कहाँ से यहाँ आकर कूद पड़े ?

रामानन्द—ये त्रिवेणी के पंडे हैं और स्नान करने वालों को मूँड़कर उनको भक्ति के योग्य बना देते हैं।

हुरमत—भला मुझे ये क्या भक्त बना सकते हैं ? ऐसे-ऐसे नाइयों को मैं बाँधे फिरता हूँ। इन लोगों ने मुझे समझ क्या रक्खा है । हुँ।

रामानन्द—अच्छा तो जल्दी कीजिए। (नाई को बुलाकर) अच्छा तू ही आ, मुंशीजी की सफ़ाई कर दे।

हुरमत (ग़ौर से देखकर) ऊँ हूँ, मैं तो इससे बाल बनवाने वाला नहीं। यह तो पूरा उजबक जान पड़ता है।

रामानन्द—वाह, उजबक क्यों, आदमी की शक्ल का तो

है ही। फिर नाई है। आप क्या समझते थे, कोई अँगरेज़ आकर बाल बनावेगा?

नाई—अरे बाबूजी, आइए तो सही, अभी आपसे आप पता चल जायगा।

रामानन्द—अच्छा मुंशीजी, चलिए, देर न कीजिए। चट-पट दाढ़ी साफ़ कराइए। (नाई को इशारा करता है)

(मुंशीजी बैठ जाते हैं। बग़ल में रामानन्द बैठता है। नाई सिर भिगोने के लिए पानी लगाता है)

हुरमत (नाराज़ होकर) अबे, सिर में क्यों हाथ लगाया, मुझे तो सिर्फ़ दाढ़ी बनवानी है। (बड़बड़ाता है)

रामानन्द—सुनिए मुंशीजी, आज है अमावस्या। बिना सिर के बाल बनवाए यहाँ से कोई जाने नहीं पाता। समझे! (नाई को सिर भिगोने के लिए इशारा करता है)

हुरमत (बिगड़कर) देखता हूँ, सिर में कैसे हाथ लगाता है। मैं हर्गिज़ बाल न बनवाऊँगा (रामानन्द से) तुम मुझे यहाँ फँसाने लाये हो?

रामानन्द—आप जानते नहीं? यहाँ काँग्रेस का नया हुक्म निकला है कि जो नाई-बाड़े में क़दम रक्खे उसे सिर और दाढ़ी दोनों घुटानी पड़ती है। समझ लीजिए, अब आप क़ानून तोड़ रहे हैं।

हुरमत—मैं क़ानून-वानून नहीं मानता। मैं काँग्रेस को क्या समझता हूँ। बिना मेरी मर्ज़ी के कौन मेरा सिर घोट सकता है।

रामानन्द—बस चुप रहिये, नहीं पुलिस बुलवाता हूँ। क़ानून तोड़ने का नतीजा आप जानते हैं।

हुरमत (बिगड़कर) तुम बड़े नीच हो, मुझे परेशान करने के लिए यहाँ लाये हो। (नाई से) अच्छा जल्दी बाल बना। फिर मैं देखूँगा, इस दुष्ट को।

नाई (सिर में पानी डालकर रगड़ता हुआ) अरे साहब, रुकिए, अभी साफ़ किये देता हूँ।

हुरमत (नाई का हाथ पकड़कर) अबे, तू समझता क्या है, मैं घोड़ा नहीं हूँ, और न मेरा सिर घोड़े की पीठ है। ज़रा इंसानियत से पानी लगा।

नाई—अरे साहब, आपने तो आफ़त कर दी। बताइए आप ही, कैसे पानी लगाऊँ। (रामानन्द से) बाबूजी, मेरी रोज़ी मारी जा रही है। अब तक तो मैं चार सिर मूंड़ता।

रामानन्द—क्या बताऊँ मैं ख़ुद भी परेशान हो गया हूँ। (हुरमत से) देखो भाई अगर ठिकाने से बाल बनवाना हो तो बनवा लो, नहीं तो मैं रफ़ूचक्कर होता हूँ।

हुरमत (डाँट कर) वाह, तुम जा कैसे सकते हो। बिना मेरे बाल बनवाये, तुम कैसे जा सकते हो। (नाई से) अच्छा बाल भिगो, जल्दी कर।

नाई (पानी से बाल भिगोकर रगड़ता हुआ) हाँ सरकार, बस दो मिनट गम खा जाइये, बस देखिए।

हुरमत (नाई का हाथ पकड़कर डाँटता हुआ)—अबे, बाल

बनाना चाहता है या नहीं। इतनी जोर से क्यों रगड़ता है। सिर में दर्द होने लगा। पाजी कहीं का, अभी ऐसा घूँसा लगाऊँगा कि औंधे मुँह गिर पड़ेगा।

नाई—आप तो अजीब मालूम होते हैं। (रामानन्द से) कहाँ फँसा दिया बाबूजी, मैं तो आपकी वजह से चला आया हूँ।

हुरमत (हाथ पकड़कर)—वाह, तुम मुझे फँसाकर निकल जाना चाहता हो। (नाई से) अच्छा बना हजामत, मगर ज़रा सँभालकर।

रामानन्द (क्रोध से)—देखते हो, शाम होना चाहती है, और आप अभी यहीं झगड़ रहे हैं।

(नाई सिर के बाल बनाकर दाढ़ी आधा बना चुकता है। इतने में दूसरी ओर एक स्नानार्थी और नाई में झगड़ा होता है। हुरमत, रामानन्द और नाई झगड़े की बातें सुनने लगते हैं)

दूसरा नाई (बाल बना चुकने के बाद) नहीं, मैं इतनी बनवाई न लूँगा। आज त्योहार है। एक रुपया से कम न लूँगा। आपने जो वादा किया है, वह दे दीजिए।

यात्री—मैंने हर्गिज़ नहीं एक रुपया देने को कहा।

नाई—आपने कहा था। यह पुण्य-क्षेत्र है, झूठ न बोलिए।

यात्री—झूठ बोलनेवाले की ऐसी-तैसी। मैं बारह आने से ज़्यादा न दूँगा।

नाई—ख़ैर, आपकी जो मर्ज़ी हो, दे दीजिए। लेकिन यहाँ

आपको पुण्य या खैरात करना चाहिए, न कि उजरत में भी कंजूसी।

यात्री (पैसा निकालकर) यह लो बारह आने। बस, अब मैं एक कौड़ी न दूँगा।

नाई—लाइए साहब, इतना ही सही। यदि मैं आपको ऐसा जानता तो उस्तरा ही न लगाता।

(नाई पैसे लेता है। हुरमत, नाई और रामानन्द देखकर चकित होते हैं)

हुरमत (नाई से) अच्छा, जल्दी बाल साफ़ कर। रामानन्द को देर हो रही है।

नाई (अन्यमनस्क होकर) नहीं सरकार, पहले तै कर लें, तब आगे बाल बनाऊँ। देखा आपने झंझट! पीछे आपसे झंझट कौन करेगा?

हुरमत (क्रोध से) तो क्या मेरी दाढ़ी अधूरी ही रह जायगी? (रामानन्द) देखते हो, इस नाई की बदमाशी। बीच धार में डुबाना चाहता है।

नाई—नहीं सरकार, पहले तय कर लीजिए, तब उस्तरा लगाऊँ।

हुरमत (नाराज़ होकर) अबे, तू मुझे क्या समझता है। मैं तेरा पैसा मार लूँगा?

नाई—ऐसा तो सभी कहते हैं। लेकिन गाँठ से पैसा निकालते वक्त और ही सूझता है।

हुरमत (क्रोध से) तू मुझे क्या समझता है? मैं ऐसा-वैसा आदमी नहीं हूँ।

नाई—आप बहुत बड़े आदमी होंगे सही, लेकिन पहले तय कर लीजिए, नहीं बाद को झंझट होगा।

हुरमत (रामानन्द से) देखते हो रामानन्द, इस नाई की शरारत। खामखाह मुझे परेशान कर रहा है।

रामानन्द (मुसकराकर) अच्छा, नाई भाई बना दो। जो कहोगे मिल जायगा।

नाई—अच्छा बाबूजी, फिर आप जानें। मैं आपके कहने से बाल बनाये देता हूँ।

(नाई बाल बना देता है। रामानन्द इशारा करता है। एक उस्तरा मूछों पर भी चला देता है। आधी मूछें कट जाती हैं)

हुरमत (खड़ा होकर बड़बड़ाता हुआ) नीच कहीं का, मूछों पर भी उस्तरा चला दिया (नाई का गला दबाकर) पाजी कहीं का, तुझे मूछें बनाने के लिए किसने कहा था?

नाई—सरकार आज का माहात्म्य पूरा सर घुटाने का है।

हुरमत—मूछें तूने क्यों बनाई, पाजी कहीं का! (शीशा देखकर) अरे यह तो आधी बन भी गई (मारने दौड़ता है) कहाँ इस धूर्त से पाला पड़ा। आज न-जाने किसका मुँह देखकर उठा था। (रामानन्द से) देखते हो, कितना निकम्मा नाई है। नीच ने आधी मूँछें ही साफ़ कर दीं।

रामानन्द (हँसता है) हः हः हः हः हः कहाँ आज झंझट में मैं भी पड़ा। (आधी बनी मूछों को देखकर हँसता है)

हुरमत—समझ में नहीं आता, इस नीच को क्या कहूँ। (नाराज़ हो कर) अबे बता तेते मा-बाप सच्चे थे ? अगर सच्चे थे तो बता आधी मूछें क्यों बनाई ?

रामानन्द (शान्ति से) अच्छा मुन्शीजी, अब तो पूरी मूछें बनवा डालिए। एक तो माहात्म्य का पुण्य भी मिल जायगा, दूसरे आधी मूछों से बिना मूछ रहना अधिक अच्छा है। जल्दी कीजिए (नाई से) अच्छा बना सारी मूछें।

हुरमत (दाँत पीस कर) अच्छा, ले नीच, बना जो कुछ बनाया चाहे। देखता हूँ तू आज क्या-क्या बनाता है।

नाई (उस्तरा उठा कर) बस, एक सकन्ड लगेगा।

हुरमत (क्रोध से) अब तो, मैं सेकिन्ड क्या, घंटा, दो घंटा-चार घंटा, दिन रात, जब तक कहेगा बनवाता ही रहूँगा। तूने मुझे समझ क्या रक्खा है ?

नाई (बनाता हुआ) लीजिए साहब, साफ़ हो गया, आप तो बिगड़े जाते हैं।

हुरमत (खड़ा हो कर) इस नीच को एक पैसा मत दो। रामानन्द, यह बड़ा पाजी शख्स है। मैं ऐसा जानता तो यहाँ हर्गिज़ न आता।

रामानन्द (मुन्शीजी से) नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है।

उसकी मेहनत मिलनी ही चाहिए। (नाई को पैसा देता हुआ) अच्छा ले एक रुपया, खुश है ?

नाई—सरकार, हजामत हो गई, यही खुशी क्या कम है। एक रुपया बहुत है।

(हुरमतराय नाई को घूरता हुआ रामानन्द के साथ स्नान करने जाता है।)

चौथा दृश्य

स्थान—पक्की सड़क

(स्नान से निवृत्त होकर मुन्शी हुरमतराय रामानन्द के साथ घर की ओर रवाना होते हैं। मार्ग में उनके कई अन्य परिचित मिलते हैं। मुन्शी जी को देखकर सब आश्चर्य प्रकट करते हैं)

एक परिचित (मुन्शीजी की सूरत देख) अरे, मुन्शीजी, क्या हो गया ? ग़मी हो गई थी तो आपने हमें सूचना तक नहीं दी ?

हुरमत (आश्चर्य से) मुन्शीजी आदाब अर्ज, मामला क्या है। आज तो मैदान सफ़ाचट है।

हुरमत (नाराज होकर) अगर सफ़ाचट है तो तुम्हारा इज़ारा। मैं चाहे सफ़ाचट कराऊँ चाहे सफ़ापट। हुँ।

तीसरा परिचित—मुन्शीजी, आपके साथ मेरी पूरी हमदर्दी है। यदि आप सूचित करते तो मैं ग़मी में ज़रूर शरीक होता।

हुरमत (दौड़कर बड़बड़ाता हुआ) कहाँ से इन पाजियों से मुलाक़ात हो गई। ग़मी, ग़मी, ग़मी। नाक में दम कर दिया। तुम सबके सब ख़ुद ही क्यों नहीं मर जाते।

रामानन्द (परिचित से) भई, जानते हो, आज बाल बनवाने का माहात्म्य है। इसीलिए मुन्शी जी ने बाल बनवाये हैं। कोई ख़ास बात नहीं है।

तीसरा परिचित—अच्छा, यह बात है। इसी से तो मैंने कहा कि आज मामला क्या है।

(मुन्शी जी रास्ता बचाकर कुछ आगे चलते हैं)

चौथा परिचित (पुकारकर) मुन्शी हुरमतराय जी सुनिए, सुनिए, इधर तो सुनिए। आज क्या मामला है। (हुरमतराय-क्रुद्ध होकर खड़े हो जाते हैं और परिचित पास आ जाता है) मुझे दुःख है कि आप के यहाँ ग़मी हो गई, मेरी आप-से पूर्ण सहानुभूति है।

हुरमत (क्रोध से) चुप, नीच कहीं का, बड़ा भारी पुण्य-वाला बना है। ग़मी हो गई। ग़मी हुई है तो मेरे घर, या तेरे। चले जाओ। ज्यादा बक बक मत करो। —

चौथा परिचित—मैं तो अपने और आपमें कोई भेद ही नहीं समझता। आपके ग़मी हुई, तो मेरे हुई, मेरे हुई तो आपके हुई।

हुरमत—हुँ, तुम्हारे ग़मी हो तो उसे मैं अपनी कैसे समझ लूँ। मुझे यह सब समझने को फ़ुरसत नहीं। जाओ यहाँ से।

परिचित—दुनिया में ऐसा ही व्यवहार होता है। ख़ैर, मुझे तो आपके साथ पूरी सहानुभूति है।

हुरमत—अपनी सहानुभूति बाँधकर लिये जाओ, और किसी को दे देना। मुझे न चाहिए, ग़मी हो तुम्हारे और तुम्हारे सात पुश्त के।

(फिर कुछ आगे बढ़ता है)

पाँचवाँ परिचित (पुकारकर)-मुन्शीजी, सुनिए तो सही। मेरी आपसे पूरी सहानुभूति है। ईश्वर करे ऐसी ग़मी ऐन त्यौहार के दिन किसी के यहाँ न हो।

हुरमत (अपने आप) ऐसे भी नीच दुनिया में रहते हैं। इतने बेवक़ूफ़ हैं कि समझते भी नहीं। जिसे देखो, ग़मी-ग़मी चिल्ला रहा है। (नाई पर क्रोध करके) नीच नाई ने सब चौपट किया, नहीं तो आज ये बातें सुनने की नौबत क्यों आती।

रामानन्द—मुन्शीजी, आप चुप रहिए। ज्यादा न बोलिए। नहीं तो घर पहुँचना मुश्किल हो जायगा।

परिचित (पास आकर) दुख है कि मैं मौक़े पर न पहुँच सका।

हुरमत (क्रोध में) पहुँचने की क्या जरूरत थी। मेरे लड़की-लड़के की शादी थी ? 'मौक़े पर न पहुँच सका' बड़े मौक़े वाले। हुँ।

रामानन्द—भाई, कोई ख़ास बात नहीं है। अमावास्या का दिन था। तीर्थ-क्षेत्र में बाल बनवाने का आज माहात्म्य है।

परिचित—अच्छा, यह बात है।

(मुन्शीजी घर के नज़दीक पहुँच जाते हैं)

एक पड़ोसी (हँस कर)—आज तो मुन्शीजी ने अच्छो शक्ल बनाई है।

दूसरा (हँस कर)—मानो घर में कोई ग़मी हो गई है।

तोसरा—आज तो सिर, मूंछ और दाढ़ी तीनों को घुटा डाला है।

चाैथा—मालूम होता है, त्रिवेणी को तानों चोज़ें भेंट कर आये हैं।

पाँचवा (मुन्शोजी के पास जाकर) मुन्शोजो, आदाब अर्ज़, बड़ा दुख है कि पड़ोसियां तक को आप ख़बर नहीं देते। आख़िर मामला क्या है ?

हुरमत (नाराज़ होकर) मामला यही है कि तेरी खोपड़ी में गोबर भर गया है, और क्या ! चले हैं मेरे साथ दुःख-दर्द ज़ाहिर करने और जब दुःख आ पड़ेगा तो कोई पास भी न फटकेगा। हुँ।

छठा—अच्छा, आपने चेहरे की कतई सफ़ाई क्यों करा डाली ?

मुन्शी—मेरी ख़ुशी मैं चाहे चेहरे की सफ़ाई कराऊँ चाहे सारे शरीर की। तुम कौन होते हो पूछने वाले।

छठा—वाह, होता कैसे नहीं। मैं आपका पड़ोसी हूँ। मैं तो अवश्य ही पूछूँगा।

हुरमत—अच्छा, आप यहाँ से जाइए। बेकार बहस न कीजिए।

छठा—इसमें बहस की क्या बात है, चेहरे की सफ़ाई देख कर किसको ख़ुशी नहीं होती।

हुरमत—सफ़ाई वाले तुम होते कौन हो। म्युनिसिपैलिटी के या तुम सफ़ाई के दारोगा हो। मैं सब की सफ़ाई करा दूँगा। इससे तुम से क्या वास्ता। (रामानन्द से) देखो न, जब से स्नान करके चला हूँ, तब से सैकड़ों मिले। हर एक को यही फ़िक्र रही कि मैंने बाल क्यों बनवा डाले। बताइए, मेरी इच्छा है, मैं बनवाता हूँ। कोई इसी तरह यदि पूछे कि मुन्शीजी, आपने खाना क्यों खा लिया, धोती क्यों पहन ली, कुर्ता क्यों पहन लिया। यह भी कोई बात है?

रामानन्द (पड़ोसियों से) भाई, मुन्शीजी को तंग मत करो। आप लोग जानते हैं, आज अमावास्या थी, पर्व का दिन ठहरा। इसीलिए बालों की सफ़ाई करवा दी गई है।

एक पड़ोसी—अच्छा ऐसी ही बात थी तो साफ़-साफ़ कह देते, इतना ग़ुर्राने की क्या आवश्यकता थी।

हुरमत (क्रोध से) क्या कहा ग़ुर्राता हूँ। क्या मैं कुत्ता हूँ। ज़रा ज़बान संभाल कर बोल नहीं तो.......

दूसरा—नहीं तो आप क्या कर लीजिएगा?

हुरमत—मैं सब कुछ कर सकता हूँ। (पुकारता है) कल्लू, ओ कल्लू! कहाँ गया, जल्दी आ।

(कल्लू का प्रवेश)

कल्लू—जी सरकार, दाढ़ी बढ़ गई। हंगामा हो गया।

हुरमत—अबे, मेरी तरफ देख, हंगामे के बच्चे।

कल्लू—(मुन्शीजी का चेहरा देखकर आश्चर्य से) जी, जी, जी, जी सरकार।

रामानन्द (कल्लू से) जा सब ठीक-ठाक कर खाने-पीने का, हम लोग एक मिनट में आये।

हुरमत—जा खाने का इंतजाम कर। आज बहुत काम करना है। जल्दी जा देर न हो।

कल्लू—जी सरकार।

(मुन्शी हुरमतराय घर पहुँच जाते हैं, तब उन्हें शान्ति मिलती है। रामानन्द नमस्कार करके घर चला जाता है। कल्लू मुन्शी हुरमतराय को भोजन कराता है।)



समालोचना का मर्ज़

प्रथम दृश्य

स्थान—बमकबिहारी का मकान

(बमकबिहारी एक आलोचक हैं। सात बज गया लेकिन वे खाट पर करवटें बदल रहे हैं। रज़ाई के भीतर कुछ गुनागुना रहे हैं। उनकी पत्नी पियारी उन्हें जगाती है।)

पियारी (ज़रा ठेल कर) अरे सुनते हो, आठ बज रहा है। उठते हो कि नहीं ?

बमकबिहारी (अपने आप) अब मैं नहीं छोड़नेवाला! देख लूँगा। ओ! हो! इतनी हिम्मत! 'सनकी' लिख दिया। अगर उसे डबल सनकी बना कर न छोड़ा तो मेरा नाम बमक नहीं।

पियारी (फिर ठेल कर) अरे, क्या बड़बड़ा रहे हो? दुनिया ने उठ कर आधा काम कर लिया; तुम अभी रजाई में ही पड़े हो!

बमक (अपने आप) सनकी, सनकी, तेरे सात पुश्त डबल सनकी!

पियारी (क्रोध में रजाई का सिरा उलट कर) उठो, उठो जल्दी उठो! फ़ुरसत के वक्त खूब बड़बड़ा लेना। तुम्हारे मारे तो आफ़त है!

बमक (उठ कर) क्यों तुम मेरे काम में दखल देती हो? मैं बड़ी जरूरी बात सोच रहा था। भूल जाऊँगा तो क्या करूँगा? किसी को 'सनकी' कह देना जुर्म हैं। कानूनन उसको सजा मिलनी चहिये।

पियारी--घर में तरकारी नहीं है। बच्चे खाने के लिए रो रहें हैं। बाजार जाओ जरा तरकारी ला दो। लिख दिया होगा, जाने भी दो। 'सनकी' कहने से तुम्हारा क्या बिगड़ जायगा।

बमक (क्रोध में) अच्छा, तुम मेरी पत्नी नहीं दुश्मन हो। सनकी कह देना कोई बात ही नहीं! तरकारी जाय चूल्हे में। (दौड़ कर कुरता-टोपी पहनने लगता हैं।)

पियारी (गिड़गिड़ा कर) अरे, सुनो तो, जरा तरकारी लेते आओ। फिर जहां चाहे जाना। अभी सारा दिन बाकी है। देखो तो, बच्चे तुम्हारा मुँह देख रहे हैं (उँगली से इशारा करती है।)

बमक (क्रोध में) इस वक्त मुझे कुछ नहीं सूझता (बच्चों की ओर देख कर) समझ में नहीं आता कि तुमने इन्हें क्यों पैदा किया ? क्या जरूरत थी ? पैसे-पैसे के लिए मुझे परेशान होना पड़ता है।

पियारी (मुसकुरा कर) मैंने पैदा किया है ?

बमक—और क्या मैंने ! मुझे क्या जरूरत थी इस बटेलियन की !

पियारी--हाँ तुमने।

बमक--मैंने ?

पियारी--हाँ, तुमने, तुमने, तुमने !!!

बमक--बस, हो चुका ! ज्यादा बात बढ़ाना अच्छा नहीं ! अच्छा मैं ही सही ! फिर जो कुछ करना हो कर लो।

पियारी—कर क्या लूँगी, बस जाओ तरकारी लाओ। जल्दी लौट आना।

बमक—तरकारी उधार नहीं मिलती। पैसा लगता है। तरकारी वाला मेरा कोई रिश्तेदार नहीं है जो मुझे यों ही दे देगा।

पियारी—उधार कौन मँगाता है, पैसे दे देना। कल के आठ आने पैसे तो अभी होंगे ही।

बमक—अब मेरे पास एक कड़ी भी नहीं है। (जेब दिखा कर) यह देख लो कहीं एक पैसा नहीं है।

पियारी—आखिर आठ आने कहां गये ? किसको दे आये ? बाहर कभी खाते-पीते भी तो नहीं हो। फिर पैसा क्या हो गय

बमक (ज़रा क्रोध में) जानती नहीं, कल अखबार के संपादकों के नाम चार लिफ़ाफे भेजे हैं और एक लेख रजिस्टरी से भेजा है, और क्या हो गया ? क्या मैंने खा डाला ?

पियारी (क्रोध में) ये सम्पादक हैं क्या ? इनका काम दूसरों से लेना ही है या देना भी। तुम्हारी चिठ्ठियों और लेखों के मारे परेशानी रहती है। सारा पैसा इसी में जाता है।

बमक—बस, बस मैं तो जानता ही था। हमारी चिठ्ठियाँ तो तुम्हारी आँखों चढ़ी हैं। अभी तो कल ही मुझे कानपुर जाना है। वहाँ साहित्य-सोसायटी की स्थायी समिति की मीटिंग है। चार-पाँच रुपए उसमें बैठ जायँगे। कल तो तुम फाँसी लगा लोगी न ?

पियारी—जो तुम्हारी मर्जी में आवे करो। तुम्हें कौन समझावे। कितने दिन फाके मस्ती में चलेगा। ऊब गयी हूँ ऊब !

बमक (पियारी की ओर उँगली उठा कर) तुम्हें क्या मालूम ! साहित्य-सेवा आसान नहीं है। त्याग है, तपस्या है, सब कुछ है। देखो उर्दू के मशहूर शायर मिर्ज़ा ग़ालिब तबाह हो गये तबाह ! लेकिन वाह रे मर्द, चेहरे पर शिकन नहीं आने दिया। आखिर में जान भी दे दी।

पियारी—हाँ, हाँ वे भी रहे होंगे तुम्हारी ही तरह ! कोई आगे-पीछे न रहा होगा। बड़ी बहादुरी की कि भूखों मर कर जान दे दी।

बमक—और नहीं तो क्या ! मर गये लेकिन आज उनका नाम लोगों की ज़बान पर है। जानती भी हो ?

पियारी—जैसे तुम्हारा नाम सबकी ज़बान पर है। देखो न कोई कुछ कहता है कोई कुछ। 'रंगरूट' के संपादक ने 'सनकी' तक लिख डाला है।

बमक (बिगड़ कर) अरे अगर उस 'रंगरूट' के खूँट न कर दूँ तो मेरा नाम बमकबिहारी नहीं। कल ही उसके खिलाफ़ प्रस्ताव पास कराता हूँ। साहित्य-सोसायटी में शामिल होने के लिए जा क्यों रहा हूँ ? यही न कि मेरा चार-छः रुपया बरबाद होगा। और क्या ? (जाने के लिए जूता पहनता है)

पियारी—करो खूब बरबाद ! न जाने किस घड़ी इस घर में आयी। (पैसा फेंक कर) यह लो पैसे, जाओ तरकारी लेते आओ (झोला दिखा कर) वह झोला टंगा है। लेते जाओ। जल्दी आना।

बमक (पैसा उठाता हुआ) झोला ! झोला क्या होगा ? मैं गांधीवादी तो हूँ नहीं। मैं झोला नहीं ले जा सकता। तुम्हें तरकारी चाहिए तो लाये देता हूँ।

पियारी—झोला लेते जाओ, हर्ज ही क्या है। तरकारी उसी में रख कर ले आना।

बमक—बस, कह दिया मैं झोला न ले जाऊँगा। मैं गाँधीवादी नहीं हूँ।

पियारी—तो तुम क्या हो ?

बमक (बिगड़ कर) जानती नहीं मैं साम्यवादी (रुक कर धीरे से) क्या नाम ससुरे का भूल गया (प्रत्यक्ष) हाँ, हाँ, आलोचनावादी। समझी।

पियारी—हाँ, समझती हूँ, समझती! तुम कोई वादी सही। प्रयत्नवादी, शुद्धवादी, छायावादी, किरायावादी जो तुम्हारी मर्जी में आवे बनो! लेकिन झोला लेते जाओ। इसमें तुम्हारा-हमारा दोनों का लाभ है।

बमक—(बिगड़ कर) क्या लाभ है?

पियारी—यही कि तरकारी गिरेगी नहीं। हाथ में लटकाये हुए चले आना।

बमक—अच्छा तो मैं बेवकूफ हूँ, जो तरकारी गिरा दूँगा। दुनियां को मैं रास्ता बताता हूँ, आलोचनाओं से कितनों की अक्ल ठीक कर दी और मैं ही तरकारी भूल जाऊँगा। तरकारी का बोझ अलग और झोला ऊपर से, (ज़ोर से) अरी समझ ले, मैं खच्चर नहीं हूँ, आदमी हूँ आदमी! मेरे भी जान है। (चलना चाहता है)

पियारी—(झोला उठाकर देती हुई) जो जो में आवे समझ लो लेकिन झोला लेते जाओ। ज़रा जल्दी आना।

(बमकविहारी झोला लेकर बड़बड़ाता हुआ क्रोध में तरकारी खरीदने के लिए घर से बाहर निकल पड़ता है)

दूसरा दृश्य

स्थान—तरकारी-बाज़ार

(एक बूढ़ा कुँजड़ा सर नीचा किये बैठा है। बमक उसकी दूकान में तरकारियों पर निगाह दौड़ाता है। दूसरे खरीददार भी घूम-घूम कर तरकारी खरीदते हैं।)

बमकबिहारी—अरे सुनता है? मूली क्या भाव दी?

कुँजड़ा (सर ऊपर कर के) दो पैसे सेर बाबू, लेलो कितनी लोगे?

बमक (कुँजड़े को देखकर अप्रत्यक्ष) शिव! शिव!! हुआ तो अपशकुन! खैरियत से घर लौट जाऊँ तब समझूँ। (प्रत्यक्ष) तुम्हें दूकान पर किसने बैठने को कहा? क्या तेरे बाल-बच्चे नहीं हैं? एक आँख का अपशकुन तो बड़ा ही बुरा होता है।

कुँजड़ा (ज़रा टर्रा कर) मेरी दूकान है, मैं बैठा हूँ बाबू, इसमें बिगड़ने की बात क्या है?

बमक (क्रोध में) तेरी दूकान है तो क्या खरीदारों का शकुन बिगाड़ेगा? सैकड़ों आदमियों पर आज ईश्वर जाने क्या बीते। म्युनिसिपैलटी वालों को तुझ पर टैक्स लगाना चाहिए।

कुँजड़ा—बाबू गर्माओ मत, न लेना हो तो आगे जाओ बेकार की खैंहस से क्या फ़ायदा?

बमक—यह खैंहस है। एक तो अपशकुन कर दिया, फिर भी टर्राता है। देख कल ही अखबारों में म्युनिसिपैलिटी की

धज्जियाँ उड़ाये देता हूँ। कल से यहाँ बैठने भी न पायेगा। जानता है मैं कौन हूँ ?

कुँजड़ा—(खड़ा हो कर कमर पर हाथ रख कर) कौन हैं आप, राजा, महाराजा, लाट, कलट्टर, कौन हैं आप (लोगों से) देखिए न बाबूजी, बेकार मेरे पीछे पड़ गये। लेना देना कुछ नहीं बेकार की खैंहस।

बमक—जानता नहीं मैं आलोचक हूँ। अखबारों में लेख लिखता हूँ। समझ क्या रखा है। एँ। मार्केट से निकलवा दूँगा।

कुँजड़ा (हाथ जोड़ कर) जाइए सरकार, बेकार का हुज्जत न कीजिए। दूकानदारी खराब हो रही है। अब तक चार-छः पैसे का मैं बेंच लेता।

(बमक-बिहारी बड़बड़ाता हुआ दूसरी दूकान पर आता है। खरीदार उनकी तरफ बड़ी गौर से देखते हैं। एक कुँजड़िन को दूकान पर देखता है)

बमक (कुँजड़िन से) गाजर क्या भाव दी ?

कुँजड़िन मालिक कौन सी गाजर, देशी या विलायती ?

बमक (क्रोध में) देशी विलायती मैं नहीं पूछता, मुझे गाजर चाहिए गाजर !

कुँजड़िन (गाजर दिखा कर) यह देखिए, सरकार यह विलायती है और यह देशी। जो जी में आवे ले लीजिए।

बमक—विलायती, यह विलायती गाजर कहाँ से आयी ? क्या तुम लोग विलायती चीजें भी बेंचते हो ?

कुँजड़िन--सरकार, विलायती गाजर मेरे खेत में पैदा होती है।

बमक—इससे क्या, है तो यह विलायती ! स्वदेशी चीजों के जमाने में विलायती चीजें बेचने के लिए तुमसे किसने कहा? मैं अखबारों में इस बात को जरूर लिखूँगा। कांग्रेस के राज्य में भी विलायती चीजों का स्तेमाल ?

(रामनाथ का प्रवेश)

रामनाथ—क्या है बमकजी ! (हँस कर) क्यों बमक रहे हो भाई ?

बमक—(प्रसन्नता से) ओ हो ! रामनाथ ! अरे यहो, देखो तो यहाँ विलायती गाजर बिक रही है। अरे भाई, बेचने वालों को छोड़ो, ताज्जुब तो है इन खरीदने वालों पर !

रामनाथ (हाथ पकड़ कर) अच्छा तो क्या आप तरकारी खरीदने आये थे ?

बमक—हाँ, भाई व्यर्थ की झाँव-झाँव में पड़ गया हूं, एक दुष्ट पहले ही मिला, एकाक्षा। उसने सगुन बिगाड़ दिया। मैं तो वहीं समझ गया था कि आज का दिन सकुशल बीत जाय तब जानें।

रामनाथ—चलो, आगे एक दूकान है, वहीं तरकारी खरीद लो, हम भी वहीं लेगें। मुझे भी काफ़ी देर हो गयी है।

(रामनाथ बमक-बिहारी को लेकर एक दूसरी दूकान पर आता है। कुछ और ग्राहक खरीद रहे हैं)

रामनाथ—अरे उजियारी, देना तो पंडितजी को तरकारियाँ (बमक-बिहारी से) अच्छा लीजिए क्या-क्या लीजिएगा ?

बमक—ज्यादा कुछ नहीं, थोड़ी-सी तो लेनी ही है। लेकिन क्या बतावें उन लोगों ने बड़ा हैरान किया (गाहक सब बड़े गौर से देखते हैं।)

रामनाथ—अच्छा झोला उठाओ। जो लेना हो ले लो, लेकिन चुपचाप ले लो।

बमक—(बिगड़ कर) वाह, आप तो ऐसा कहते हैं जैसे चोरी करने आया हूँ। चुपचाप ले लो ? चुपचाप की कौन सी बात है। मैं तो सरे आम लेता हूँ।

उजियारी—हाँ बाबूजी लीजिए, क्या-क्या चाहिए ? देखिए, आलू, बैंगन, कुम्भड़ा, तुरई, पालक, प्याज, लीजिए।

बमक (नाराज हो कर) हैं, प्याज भी बेचते हो ! जानता नहीं मैं ब्राह्मण हूँ। मैं ऐसी चीजें छूता भी नहीं।

रामनाथ—भाई, देर बहुत हो रही है। जो तुम्हें खरीदना हो ले लो, प्याज के पीछे यहाँ भी तकरार मत करो।

(बमक-बिहारी बड़बड़ाता हुआ तरकारी झोले में रखता है)

उजियारी—अच्छा कितने की तरकारी लो सरकार ?

बमक—चार पैसे की चार ! और क्या तू ज्यादा दे देगा ?

उजियारी—(रामनाथ की ओर देख कर मुसकरा कर) सरकार झोला तो काफी भर गया है। (टटोलता है।)

बमक (नाराज होकर) तो क्या मैं चोर हूँ, जानता नहीं मैं कौन हूँ ? मैं तेरी आलोचना कर दूँगा, समझा !

उजियारी—आलू-चना तो मेरे ही पास है सरकार, आपके कहने की जरूरत नहीं है। हाँ, छः पैसे की तरकारी आपने ली है।

बमक (बिगड़ कर) अरे आलोचना ! आलोचना !! आलोचना !!! कुछ पढ़ा-लिखा भी है या नहीं, हुँ। चार पैसे की मैंने तरकारी ली, कहता है छः पैसा। अगर छः पैसे की लेनी थी तो चार पैसे घर से लेकर चलता ही क्यों ? क्या मैं बेवकूफ हूँ ?

रामनाथ (उजियारी से) अच्छा भई, दो पैसे मुझ से लो। कहाँ जिल्लत में पड़े (बमकबिहारी से) भई, यहाँ भी बकबक मत करो। यहाँ तुम्हारी आलोचना-वालोचना कोई नहीं समझता, समझे। चलो।

बमक—वाह समझता नहीं है तो समझाया जायगा। कुछ भी हो इसको तो समझाना ही पड़ेगा ?

रामनाथ (हाथ पकड़ कर) देखो, यह तरकारी-बाजार है। यहाँ रहते हैं ठेठ कुंजड़े ! खैर, यह तो भला आदमी है, नहीं तो अभी और कोई होता तो झोला रखवा लेता।

बमक (कुछ याद करके) झोला रखवा लेता ? यह कैसे ? (अप्रत्यक्ष) हुँ, इसीलिए मैं झोला नहीं ला रहा था ! मैं तो

सब जानता था। (प्रत्यक्ष) कोई कैसे रखवा लेता, जेलखाने की हवा खानी पड़ती!

रामनाथ—खैर, भई, चलो। तुमसे यहाँ कौन कहे।

(बमकबिहारी बड़बड़ाता है। रामनाथ उसका हाथ पकड़ कर अपने घर की ओर ले चलता है)

बमक—इधर कहाँ चले, मुझे घर जाना है।

रामनाथ (नम्रता से) अरे चलो मेरे घर, थोड़ी देर बैठो। गपशप हो, फिर चले जाना। तुमसे एक बहुत जरूरी काम है।

बमक—जरूरी काम! कौन सा ऐसा काम है जो जरूरी निकल आया।

रामनाथ—बाज़ार में आपकी बड़ी चर्चा हो रही है। चर्चा ही नहीं बदनामी! 'रंगरूट' के सम्पादक ने क्या लिख दिया?

बमक—(क्रोध में) उसकी तो कल ही खबर लेता हूँ।

रामनाथ—चलो, कुछ सलाह-मशविरा हो जायगा।

(रामनाथ और बमकबिहारी का प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य

स्थान—रामनाथ का मकान

(कमरे में तीन-चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। दीवाल पर कुछ तस्वीरें टंगी हैं। एक कोने में छोटी मेज है, उस पर पान का डब्बा रखा है।)

बमक (कुर्सी पर बैठ कर) अरे रामनाथ, यह किसकी तस्वीर है ?

रामनाथ—वाह बमकजी, आप जानते ही नहीं, यह मिस लैला की है।

बमक—(प्रसन्न होकर) मिस लैला कौन सी बला है ?

रामनाथ—नहीं, नहीं कला बला नहीं। यह सिनेमा की मशहूर नाचने वाली हैं। बड़ा अच्छा नाचना जानती हैं ? बड़े नाम-गाम हैं।

बमक—अच्छा, क्यों न हो नाम-गाम। सूरत ही ऐसी है। इन्हीं लोगों का तो नाम है, हम लोगों को कौन पूछता है।

रामनाथ—वाह, आप समालोचक ठहरे, आपकी पूँछ कहीं लम्बो है। पता नहीं किस मौके पर किसकी समालोचना कर बैठें।

बमक—हाँ, है तो बात कुछ ऐसी ही। लगी-लिपटी मुझ से नहीं कही जाती। मैं तो समालोचना में दिल का तत्व निचोड़ देता हूँ। हाँ, तो यह........।

रामनाथ (बात काट कर) अच्छा आप बैठिए, मैं आता हूँ। (उठना चाहता है)

बमक (धीरे से) अच्छा एक बात कहूँ, (भावभंगी से) किसी से कहना मत।

रामनाथ— नहीं-नहीं, ऐसी भी कोई बात है, कहिए।

बमक—भाई, हैं तो मिस लैलाजो बड़ी दिल-चस्प, सो मुझे दर्शन कराओ। हः हः हः हः हः।

रामनाथ—हाँ चलो, आज सिनेमा में। लेकिन भाई एक शर्त है, वहाँ भी बमक न जाना। मेरी इज्जत चली जायगी। चुपचाप बैठे रहने की प्रतिज्ञा करो तो ले चलूँ।

बमक (प्रसन्नता से) हाँ, मैं चुपचाप बैठा रहूँगा, बस एक बार देखना चाहता हूँ। अहा, क्या याद आयी। वह गीत मेरे कानों में गूँज उठा—'जो तुम आ जाते एक बार' लेकिन यदि 'जाते' के स्थान पर 'जाती' होता तो कमाल हो जाता। खैर, मैं तो 'जाती' ही पढ़ता रहता हूँ।

रामनाथ—अच्छा, तो शाम की रही। देर काफी हो गयी है।

बमक (घड़ी देख कर) अरे, बारह बज रहा है। राम-राम तरकारी लेकर अभी मैं यहीं बैठा हूँ। (उठ कर) अच्छा मैं चलता हूँ। शाम को ठीक रहा।

(बमक-बिहारी का घर में प्रवेश)

बमक—अरे, कहाँ गयो, लो मैं तरकारी लाया।

पियारी (क्रोध में) तुम्हारी तरकारी गयी चूल्हे में। अब क्या करूँगी। कहीं बारह-एक बजे तरकारी बनती है।

बमक (जूता उतार कर कोने में फेंकता हुआ) अच्छा तो मेरा परिश्रम यों ही चला जायगा। कितनी झंझट उठानी पड़ी। झोला जाते जाते बचा। मैं इसीलिए तरकारी लेने नहीं जा रहा

था। मुझे ज़बरदस्ती सोते से जगाया गया। मेरी नींद खराब की गयी। आज रात को मुझे इतना जरूरी काम है कि क्या बताऊँ, परेशान कर डाला। ब्याह करके पछता रहा हूँ ?

पियारी—रात को जरूरी काम है ?

बमक—हाँ-हाँ, रात को, दिन को नहीं, रात को। खासतौर से मुझे निन्त्रण मिला है। जाना है। जरूर जाना है। (गुनगुनाता है।)

"जो तुम आ जाती एक बार"

पियारी—(कुछ समझ कर) अच्छा अगर सूरज डूबने से पहले घर पर न आ गये तो अच्छा न होगा। आज तो मैं तुम्हें कहीं भी जाने न दूँगी। आज-कल तुम्हें कुछ और ही सूझ रहा है।

बमक (क्रोध में) वाह, जाने कैसे न दोगी। मैं तो जाऊँगा ही। मुझे जाना ही पड़ेगा। बिजली गिरे, पत्थर पड़े देव पुरस्कार रुके, मंगलाप्रसाद पारितोषिक न दिया जाय लेकिन मुझे तो जाना ही है।

पियारी—आखिर तुम्हें क्या झक सवार हो गयी है ? कैसी बातें कर रहे हो ? तुम हर्गिज नहीं जा सकते।

बमक—अच्छा, न जा सकूँगा ?

पियारी—हाँ, न जाने दूँगी।

बमक (उठ कर) अच्छा तो ले मैं अभी चला। तेरी

हिम्मत हो तो रोक ले। (रुक-रुक कर) अब मैं चलता हूँ, (इधर-उधर देख कर) मैं नहीं माननेवाला। मैं इसी वक्त जा कर दम लेता हूँ। (चलना चाहता है)

पियारी (रोक कर) सुन तो लो, इस वक्त तो मैं न जाने दूँगी।

बमक--हूँ, अभी इस वक्त। तूने समझ क्या रक्खा है ? मैं स्त्रियों का गुलाम नहीं हूँ।

पियारी—अच्छा चलो, थोड़ा खा लो। गुलामी तो तुम जाने किसकी करोगे।

बमक (क्रोध में) और क्या मैं स्वतंत्र पुरुष हूँ। आज मैं अगर दूसरे मुल्क में होता तो जाने कहाँ से कहाँ पर पहुँच जाता। लेकिन मुझे तो तुम्हारे साथ चक्की पीसनी थी। हर काम में रुकावट डाल देती है। खैर, मैं बाहर वालों से तो निकट लेता हूँ, लेकिन तुम्हारी बला को मैं कहाँ तक भुगतूँ। (सर नीचा करके दोनों हाथ सर पर पटक कर) हे भगवान मेरी रक्षा कीजिए !

पियारी—अच्छा, चलो थोड़ा सा खालो। औरतों की तरह रोना अच्छा नहीं। अभी तो कहते थे, मैं स्वतन्त्र हूँ, फिर यह क्या ?

बमक—मैं स्वतन्त्र अवश्य हूँ, परन्तु न जाने किसने मेरा विवाह कर दिया ! (हाथ मींज कर) यदि आज मैं..........

उसे पा जाता तो·······

पियारी—अरे, तुम यह कैसी बातें कर रहे हो। तुम्हारे पिता जी ने तुम्हारा विवाह किया था। नहीं जानते ?

बमक—(आश्चर्य से) पिता जी, हाँ हाँ भूल गया था। खैर कोई बात नहीं। (ऊपर की ओर मुँह उठा और हाथ जोड़ कर) हे मेरे ऊपर दया करने वाले पिता! मेरी रक्षा करो।

पियारी--(हंसकर) अच्छा, चलो देर न करो। अच्छा लो शाम को चले जाना। बस, खालो फिर अपनी स्कीम बनाओ

बमक—(प्रसन्न होकर) अच्छा, अच्छा मैं शाम को जाऊँगा तुमने कह दिया। (पियारी की ठुड्डी पकड़ कर) बड़ी सज्जन हो। बहुत अच्छी हो। पति की आज्ञाकारिणी हो! सती स्त्री हो! वाह!

(बमक भोजन करने बैठता है। पियारी उन्हें खिलाती है)

चौथा दृश्य

स्थान--सिनेमा-हाल

(सिनेमा हाल खचाखच भरा है। शोर से हाल गूंज रहा है। कोई सीटी बजा रहा है, कोई टार्च दिखाता है। एकाएक पर्दा खुलता है। मिस लैज़ी दिखायी देती है। तालियां बजती हैं)

बमक—(गर्दन ऊँची करके) देखने में तो लैज़ीजी बड़े काम की हैं। जरा कम दिखायी देता है (जेब से चश्मा निकालकर लगाता है)। हाँ, बहुत ही अपटूडेट हैं। एजूकेटेड जान पड़ती हैं।

(रामनाथ से) चलो यहाँ से ठीक नहीं दिखायो देता। एक दम तबलेवाले के पास चल कर बैठें। (उठना चाहता है)

रामनाथ—(हाथ पकड़ कर बिठाता हुआ) आप आगे कहां जा रहें हैं। बैठे रहिए। यह सिनेमा हाल है। सभ्यता सोखिए। चुप रहिए।

बमक—(क्रोध में) वाह खूब रहो। टिकिट के दाम दिये हैं या चोरी से आया हूँ। चुपचाप क्यों रहूँ। परमात्मा ने ज़बान किस लिए दी है। मैं तो आगे बैठू गा।

रामनाथ—(नाराज़ होकर धीरे से) मैंने चलते ही वक्त कह दिया था कि तुम वहाँ चुपचाप रहना। लेकिन यहाँ फिर वही— यहीं बैठो।

बमक—(क्रोध में) वाह, यहाँ सत्याग्रह तो हो नहीं रहा है। तुमने १४४ लगा दी। मैं गूँगा नहीं हूँ। ईश्वर ने मुझे बोलने की शक्ति दी है। मैं अपनी शक्ति का यहां उपयोग करूंगा। बोलूंगा, जरूर बोलूंगा। सौ बार बोलूंगा। अब तो मैं जरूर बोलूंगा। क्यों चुप रहूँ। मैं किसी का शासन स्वीकार नहीं कर सकता।

रामनाथ—अच्छा, बस जमे रहिए। बोलिए खूब, अभी आप से आप पता चलेगा।

बमक—पता क्या चलेगा ? मैं अपनी लुगाई का शासन तो मानता ही नहीं। यहाँ मैं किसी को क्या समझूँ ?

(आगे पीछे की सीटों से "चुप रहिए" की आवाज़ होती है।

हाल में सन्नाटा छा जाता है। मिस लैली गाना गाती हैं)
(दर्शकों की ओर से 'वाह' 'वाह' की ध्वनि होती हैं। तालियाँ बजती है। 'वंस मोर' की आवाज़ होती है)

बमक—(खड़ा होकर क्रोध में) बस, लैलीजी रहने दीजिए। (लोगों से) आप लोग अपना पैसा खराब कर के क्या कीजिएगा? पुरुष जाति का यहाँ घोर अपमान है। साहित्य का सत्यानाश किया जा रहा है।

एक दर्शक—(खड़ा होकर) बस, महाशयजो बैठ जाइए; उपदेश न दीजिए। यह सनातनधर्म या आर्यसमाज का जलसा नहीं है।

बमक—(जोर से बिगड़ कर) वाह, मैं कैसे चुप रह सकता हूँ। आलोचना करने का मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है, जैसे हिन्दुस्तान को स्वराज। मैं पैसा खर्च करके आया हूँ। मेरा पैसा मुफ्त का नहीं है।

(सिनेमा के मैनेजर का आना। लोगों को शान्त करना। बमक जी को शान्त होकर बैठने का आग्रह करना। हाल में सन्नाटा छा जाता है। मिस लैली फिर गाती हैं)

बालम मेरा जहर का प्याला।
ऊँचे स्वर की बोली बोले, खावै खूब मसाला।
नाक बन गयी चिपटा ताला, आँखें हैं गुल्लाला॥

(हाल फिर गूँज उठता है। तालियों की गड़गड़ाहट होती है।)

बमक—(क्रोध कूद कर में स्टेज के पास पहुँच कर) गाना बन्द करो। यह पवित्र स्थान है। यहाँ एक से एक धर्मात्मा बैठे हैं। सभी पुरुष हैं। बन्द करो भँडैती। (दर्शकों की ओर फिर कर) भाइयो, ऐसा नाच किस काम का। आप लोग उठ चलिए। यहाँ पुरुष जाति का अपमान हो रहा है। आप लोग 'ज़हर के प्याले' हैं ? मेरी स्त्री मुझे प्यार करती है। मेरी नाक चिपटी कदापि नहीं है। ('चुप रहो' 'चुप रहो' का शोर) मेरी नाक ताला कैसे हो सकती है ? ताले के लिए ताली चाहिए। कविता बिल कुल अण्ड-शण्ट है। हिन्दी-साहित्य का सत्यानाश हो रहा है। (लोगों का शोर 'बैठ जाइए') मैं अखबारों में धुर्रे उड़ाऊँगा। स्त्री का यह मजाल कि पुरुष की खिल्ली उड़ावे। मेरे पैसे की बदौलत यह नाच हो रहा है। मैं ज़हर का प्याला हर्गिज़ नहीं हूं। आप लोग भी मत बनिए। चलिए, उठिए। भाइयो, यह मरण-त्यौहार है। (शोर 'हटाओ इन्हें, यह कौन हैं बीच में कूद पड़े') मैं हर्गिज न हटूंगा। मैं पुरुष-जाति और साहित्य को कलंकित होने से बचाऊंगा। मैं बलि हो जाऊंगा, सत्याग्रह करूंगा, अखबारों में छपवाऊंगा। (शोर) आप लोग मुझे नहीं जानते ? मैं समालोचक हूँ। आप लोगों ने समझ क्या रक्खा है ?

एक दर्शक—भाग जाइए यहाँ से। आपको किसने बुलाया ?

बमक—(क्रोध में) मैं अपने आप आया हूं। मुझे कौन बुला सकता है ? किसकी हिम्मत है ? तुम पुरुष हो ? लानत

है तुम्हारे पुरुषत्व पर। तुम्हारे माता-पिता स्वर्ग से देखो हंस रहे हैं कि मेरा बेटा कितनी बहादुरी दिखा रहा है।

एक दर्शक—(ज़ोर से) अपनी बात वापस लो। मेरे माता-पिता ज़िंदा हैं (वह बमक की ओर दौड़ता है। कुछ लोग दौड़ कर पकड़ते हैं। कुछ बमक को पकड़ लेते हैं।)

बमक—(हाथ उठा कर) होंगे ज़िंदा तुम्हारे माँ-बाप। मुझे क्या करना है? लेकिन तुफ़ है उन पर भी जिन्होंने तुम्हारे ऐसे सपूत पैदा किये।

(हाल में गड़बड़ी पैदा हो जाती है। पुलीस आती है और बमकजी को हाल के बाहर पकड़ ले जाती है।

बमक—(पुलीस से) तुम लोग मुझे पकड़ने वाले कौन हो? मैं तो खुद ही नाच नहीं देखना चाहता। तुफ़ है ऐसे नाच पर।

पुलीस—जाइए महाराज, जाइए। यह सिनेमा है।

बमक—जाऊँगा नहीं तो क्या यहाँ सोने आया हूँ। मैं अभी जाता हूँ। यहाँ जो रुके उस पर धिक्कार है। जितने देख रहे हैं उनको मैं क्या कहूँ। कल के अखबार में देखना मज़ा। देखना है कौन ज़हर की पुड़िया है मैं या वह नाचने वाली बाज़ार की······।

बमक—(चलते-चलते) मैं यहाँ हर्गिज़ नहीं रुकने वाला। कल मैं यहाँ के मैनेजर, दर्शक और पुलीसवालों, सब को देख लूँगा। इन लोगों ने समझ क्या रक्खा है? (वह आगे बढ़ता है। लोग हँसते हैं)

(रामनाथ सिनेमा के बाहर निकलकर)

रामनाथ—(पुकार कर) अरे, सुनिए बमकजी, ज़रा सुनते जाइए।

बमक—(क्रोध में) मैं हर्गिज नहीं सुनने वाला।

रामनाथ—भाई, सुनो तो। एक जरूरी बात करनी है।

बमक—(ज़ोर से) मैं नहीं रुकने वाला। मुझे कल साहित्य सोसाइटी में जाना है। वहाँ मैं सिनेमा के खिलाफ़ और 'रंगरूट' वाले की मरम्मत के प्रस्ताव पेश करूँगा। जब अखबार में छपेगा तब पता चलेगा। मुझे समझ क्या रक्खा है, एँ!

(रामनाथ पुकारता रह जाता है। बमक-बिहारी बकता-बकता आँख से ओझल हो जाता है। एकत्रित लोग हँसते हैं।)

पाँचवां दृश्य

स्थान—साहित्य-सोसाइटी का हाल

(कई साहित्यिक बैठे हैं। कुछ कवि और कुछ लेखक हैं। सभापति उच्च आसन पर विराजमान हैं। सभा लगभग समाप्त हो चुकी है। बमकबिहारी का एकाएक प्रवेश)

एक साहित्यिक—आइए, समालोचकजी, आइए।

दूसरा—आइए, आइए, बिराजिए। सभा तो खतम हो गई। अब तक आप कहाँ थे? (सभापतिजी मुसकराते हैं, अन्य साहित्यिक भी बमकजी को देख कर मुसकराते हैं।)

बमक—(भावभंगी से) एँ, सभा समाप्त हो गयी ? यह कैसे हो सकता है। उसे अभी समाप्त न होना चाहिए। अभी वह समाप्त हो ही नहीं सकती। मैं कितनी दूर से चला आ रहा हूँ। तंग कर मारा दुष्टों ने।

तीसरा—हाँ, इसी से आपका चेहरा फक है। हाँफ भी काफी रहे हैं। क्या कुछ मसाला लाये हैं ?

बमक—हाँ-हाँ, जुरूर लाया हूँ। नहीं तो आया किस लिए हूँ। मुझे आप लोगों के दर्शन की आवश्यकता नहीं थी।

चौथा—हाँ और क्या, दर्शन की क्या आवश्यकता थी ?

सभापति—(मुसकरा कर) अच्छा तो बताइये, आपको क्या कहना है ?

बमक—महोदय, मुझे कहना कुछ नहीं है। मुझे जो कुछ भी कहना था, खूब कह आया हूँ, काफी कह आया हूँ, जोरों से कह आया हूँ।

सभापति—अच्छा-अच्छा, समय खतम हो चुका है। जो कुछ कहना हो कहिए।

बमक—महाशय, समय तो अपने हाथ में है। रात अपनी है, दिन अपना है। मैं कुछ कहना नहीं चाहता, हाँ जो कुछ लिखा है, उसे सुनाना चाहता हूँ।

सभापति—तो क्या आप कोई लेख पढ़ना चाहते हैं ?

बमक—महाशय, लेख तो नहीं है लेकिन जो कुछ है वह किसी उत्तम लेख से कम नहीं है। इससे साहित्य का सुधार होगा। अराजकता खतम हो जायगी।

सभापति—आपका मतलब क्या हैं, जल्दी कीजिए।

बमक—मेरा मतलब कुछ नहीं है। मैं छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका, बूढ़े-जवान किसी से कुछ मतलब रखता ही नहीं। मतलब रखना मैं एक नैतिक पाप समझता हूँ (हँसी)

सभापति—अच्छा, पढ़िए।

बमक—महाशय, अब मैं पढ़ता हूँ (साहित्यिकों से) अप लोग गौर से सुनिए। कान खोल कर सुनिए। समझिए। विचार कीजिए। तमाशा नहीं है। साहित्य के जीवन मरण का प्रश्न है।

सभापति—अच्छा, थोड़े में खतम कीजिए।

बमक—जी हाँ, महाशयजी घबराइए नहीं, भयभीत न हों, मैं जल्दी से जल्दी, ज्यादा से ज्यादा पढ़ कर खतम करता हूँ।

सभापति (नाराज होकर) अच्छा शुरू कीजिए।

बमक—बहुत अच्छा। (बड़े गौर से पढ़ता है)

"यह सोसायटी 'रंगरूट' के सम्पादक को हजार बार धिक्कारती है जिन्होंने हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक आदरणीय श्रद्धेय पंडित बमकबिहारीजी को 'सनकी' विशेषण से लिपि-बद्ध किया है। सोसायटी यह उम्मीद करती है कि आगे से वे अपने कुकृत्यों से बचेंगे।"

(बड़े जोर का 'कहकहा' लगता है। लोग आपस में काना-फूसी करते हैं।)

बमक—अच्छा, क्या यहाँ नाच हो रहा है ? तमाशा हो रहा है ? दाँत निकालना इस मौके पर शरीफों का काम नहीं हैं। ('जी हाँ' की आवाज होती है।)

सभापति (मुसकरा कर) यह तो लेख नहीं प्रस्ताव है।

बमक—और नहीं तो क्या, आपने अभी तक क्या समझ रखा था ? फिर इसमें मुसकराने की क्या बात है ? बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आप ऐसे उच्च पुरुष भी इन लोगों के चक्कर में पड़ जाते हैं।

सभापति (गम्भीर होकर) अच्छा, आपके प्रस्ताव का समर्थन कौन करता है ?

बमक—वाह, खूब कही। यहाँ। जितने बैठे हैं, सभी मेरे समर्थक हैं। सारा मुहल्ला समर्थक है, सारा शहर समर्थक है, सारा जिला समर्थक है, कमिश्नरी, सूबा, हिन्दुस्तान नहीं-नहीं सारी दुनियाँ समर्थक है। मुझे समर्थक की कमी नहीं।

सभापति—अच्छा, यहाँ जो सज्जन बैठे हैं, उनमें से कौन आपके प्रस्ताव का समर्थन करते हैं ?

बमक—यहाँ सभी समर्थक हैं। कौन नहीं है। समर्थक होना पड़ेगा, जरूर होना पड़ेगा।

सभापति (साहित्यकों की ओर देख कर) कौन इस प्रस्ताव का समर्थन करता है ? (सब चुपचाप बैठे रहते हैं)

बमक—अच्छा कोई नहीं समर्थन करता। देख लिया जायगा। इन लोगों ने अपने को समझ क्या रक्खा है। (त्योरी चढ़ाकर सब को देखता है)

सभापति—तब आपका प्रस्ताव नहीं लिया जा सकता।

बमक—वाह, लिया कैसे नहीं जा सकता? मैं क्या मर गया हू? आपके सामने जिन्दा खड़ा हूँ। लीजिए मैं खुद समर्थन करता हूँ। कोई न करे न सही। समर्थन करने वालों की कमी नहीं।

सभापति—आप समर्थन नहीं कर सकते। जो प्रस्तावक होता है वह समर्थक नहीं हो सकता।

बमक—यह कहाँ का नया कानून है? आप फिलासफी नहीं जानते। हमारा हिन्दू-धर्म बड़ा उदार है। उसका दर्शन भी उच्च है। मैं मुँह से प्रस्ताव करता हूँ और आत्मा से समर्थन। मुँह अलग चीज है और आत्मा अलग। शरीर नष्ट होने वाला है और आत्मा अमर। जरा फिलासफी समझिए। दोनों भिन्न हैं। दिव्य-चक्षुओं से देखिए। ज्ञानेन्द्रियों को जगाइए।

सभापति—हाँ, यह ठीक है लेकिन आपका प्रस्ताव नहीं लिया जा सकता।

बमक—आपको लेना पड़ेगा, अवश्य लीजिए। (ज़ोर की हँसी होती है)

सभापति—मुझे जो कुछ कहना था, कह दिया। प्रस्ताव आपका नहीं लिया जा सकता।

बमक—अच्छा, तो न लीजिए। लीजिए, मैं दूसरा प्रस्ताव करता हूँ। जाने दीजिए। कोई न समर्थन करे, न सही।

सभापति—अब आप प्रस्ताव नहीं कर सकते।

एक साहित्यिक—(सभापति से) अच्छा इसे भी खतम होने दीजिए।

सभापति—अच्छा, जल्दी कीजिए। दो मिनट और समय दिया जाता है।

दूसरा—बमकजी कहिए, जल्दी कीजिए। पढ़िए।

बमक—अच्छा लीजिए मैं पढ़ता हूँ। सुनिए।

" यह सोसायटी मिस लैली ऐसी थर्ड क्लास (जोर की हँसी) नाचनेवाली की निंदा करती है। यहाँ के साहित्यिक पुरुष एक स्वर से इस बात का विरोध करते हैं कि वह पुरुष जाति की घातिनी है और वह जो गाना गाती है वह भयानक अश्लील है और काव्य-साहित्य में कुरुचि उत्पन्न करनेवाला है (नहीं-नहीं की आवाज)। साथ ही यह सोसायटी भारत की सती कुलावतंस महिला-रत्नों से अपील करती है कि वे मिस लैली ऐसी बाजारू औरत का मुकाबला खम ठोंक कर करें।"

('वाह! वाह!' की आवाज। कमरा कह-कहे से गूँज उठता है।)

सभापति—(मुसकुरा कर) प्रस्ताव एक है या दो?

बमक—(बिगड़ कर) वाह, मैंने एक बार में जब प्रस्ताव पढ़ दिया तो इसमें दो कैसे हो सकता है? महाशय कृपा कर के

समझिए। बेकार कानून मत छाँटिए। (सभापति के अपमान की चारों ओर से आवाज।)

सभापति—(सब को रोक कर) अच्छा, आपके प्रस्ताव का समर्थन कौन करता है?

बमक—(बिगड़ कर) फिर वही आपने झंझट लगाया। मालूम होता है आप मेरा प्रस्ताव पेश ही नहीं होने देना चाहते।

सभापति—नहीं, नहीं, आप समर्थक ढूँढ़िए। पेश क्यों नहीं किया जा सकता?

बमक—(बिगड़ कर) बस, मैं समझ गया। चोर चोर मौसेरे भाई। अब मैं प्रस्ताव का समर्थन नहीं चाहता। मैं किसी से समर्थन कराऊँगा ही नहीं। मुझमें दम होगा तो मैं समर्थन कर लूँगा। यदि मैं प्रस्ताव पेश कर सकता हूँ तो समर्थन करने का भी दम रखता हूँ।

एक साहित्यिक—यदि आप कहें तो मैं समर्थन कर दूँ।

बमक--नहीं, नहीं, मैं आप लोगों से समर्थन नहीं कराना चाहता। मैं किसी और से समर्थन करा लूँगा लेकिन आप ऐसे महात्माओं से समर्थन न कराऊँगा।

समापति--ठहरिए, समर्थन कराइए।

बमक—(क्रोध में) मैं अब यहाँ एक मिनट नहीं ठहरनेवाला। ठहरनेवाले पर लानत है और जो यहाँ ठहरे उस पर हजार लानत है। (उठ कर दरवाजे के बाहर बढ़ते हुए) मैं यहाँ थूक

भी नहीं सकता। तुम लोगों ने आखिर मुझे समझ क्या रखा है ?

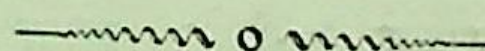
दूसरा साहित्यिक—अरे, बमकजी सुनिए तो। हम लोग भी आते हैं। रुकिए, रुकिए,।

बमक—(रुक कर हाथ झटक कर) मैं हर्गिज नहीं सुन सकता। कल ही मैं आप लोगों को बतलाता हूँ। सभापति भी अपने को कानून का पुतला समझता है। सभापति, मेम्बर और इस सभा की कल मैं अखबारों में धुर्री उड़ा दूँगा। तुम लोगों ने मुझे क्या समझ रखा है।

तीसरा—अरे जरा मेरा खयाल रखिएगा।

बमक—(हाल से बाहर निकल कर जोर से) मैं किसी को नहीं छोड़नेवाला। एक एक को समझ लूँगा। 'रंगरूट' वाला, लैली और तुम सब लोग एक ही थैली के चट्टे बट्टे हो और वह दाढ़ीवाला सभापति बना है। अपने को सुकरात समझता है। यदि मैंने उसे बुकरात न बना दिया तो मेरा नाम बमक नहीं। आखिर मुझे क्या समझ रखा है ? हुँ!

(बमकबिहारी चला चला जाता है, सभापतिजी मीटिंग खतम करते हैं। साहित्यिक आपस में बातें करते हुए हाल के बाहर निकलते हैं)



व्याख्यान-वाचस्पति

पहला दृश्य

स्थान—सोने का कमरा

व्याख्यान-वाचस्पति प्रातःकाल नित्य-कृत्य से निवृत्त होकर कपड़े पहन रहा है। कभी कमरे के बाहर आता और फिर भीतर जाता है। वाचस्पति जी की धर्मपत्नी राधा कमरे के अन्दर प्रवेश करती और कुछ पूछती है।

राधा—(मुस्किराकर) अरे, आज इतनी जल्दी ! बड़ी जल्दी उठ पड़े। कहाँ की तैयारी हो रही है ?

वाचस्पति—(एकाएक नाराज़ होकर) जहन्नुम में जा रहा हूँ; और कहाँ! सवेरे-सवेरे जब कहीं चलने लगता हूँ, झट आकर टोक देती है। एक बार नहीं, हज़ार बार समझाया। आख़िर औरत की ज़ात ठहरी न। हूँ! (नाक सिकोड़कर कुरता पहनता है)

राधा—(कुछ उच्च स्वर से) पूछ ही लिया, तो मैंने तुम्हारा क्या छीन लिया। आज इतनी जल्दी उठ गए, इसी से मैंने पूछा। आख़िर शौच आदि से निवृत्त हो लिए या नहीं ?

वाचस्पति—(नाराज़ होकर) ऐसी कितनी ही छीनने वालियों को मैंने देख लिया। तूने अपने को समझ क्या रक्खा है ? मैं इतना बेवक़ूफ़ हूँ कि बिना शौच आदि हुए ही कुरता पहनने लगूँगा। जानती नहीं आज......

राधा—(बात काटकर आश्चर्य से) आज ? आज क्या ? (पास जाकर) आज क्या कोई ख़ास बात हो गई है ? ख़ैरियत तो है ?

वाचस्पति—(कुरता फेंककर) अच्छा, तो ले, नहीं मानती, तो अब जाऊँगा ही नहीं। (चारपाई पर बैठकर) पूछ ले, जो कुछ पूछना हो। कोई कसर न रहने पावे (हाथ का इशारा करके) मैं तेरी एक-एक बात का जवाब दूँगा; हरगिज़ न जाऊँगा। देखता हूँ, कब तक यहाँ मैं बैठा रहता हूँ। आज मैंने प्रण कर लिया है कि न यहाँ से एक इंच टलूँगा, और न तुझे टलने दूँगा।

राधा—(नाराज़ होकर) अच्छा लो, अगर तुम ज़रा-सी बात पर तुनक जाते हो, तो मैं अभी चली जाती हूँ। यहाँ आने का नाम तक न लूँगी।

(जाना चाहती है)

वाचस्पति—(उठकर, राधा का हाथ पकड़कर) चल-चल, जाती कहाँ है, बड़ी जानेवाली! (भावभंगी से) आने का नाम तक न लूँगी। चल, बैठ! आज मैं देखता हूँ, तेरी बहस! (राधा जाना चाहती है, किन्तु वाचस्पति उसका हाथ पकड़कर खाट पर बैठाता है)

राधा—(कुछ रुआसी होकर) मैंने तो यों ही पूछ लिया। इसमें इतना नाराज़ होने की कौन-सी बात थी?

वाचस्पति—(भाव-भंगी से) हुँ, यों ही पूछ लिया। हलुआ खाने जा रहा था न? जानती नहीं, मैं कितने ज़रूरी काम से जारहा था? (बड़बड़ाता हुआ टहलने लगता है, फिर हाथ का इशारा करके) हवाखोरी के लिये नहीं, भयानक परेशानी उठाने जा रहा हूँ! आज दिग्गजों और भद्र पुरुषों से वाग्युद्ध करना है। लेकिन तू क्या जाने, आज मुझ पर क्या बीतने वाली है? (टहलता हुआ) परेशान हो गया हूँ, कुरता-टोपी पहना नहीं कि आकर सामने खड़ी! बिना मतलब, बिना ग़रज़ टोक देती है। (इशारा करके) आख़िर तुझे मुझसे इसी वक्त पूछने की क्या ज़रूरत थी? क्यों तू मेरे हर काम में टाँग अड़ा देती है? (टहलता है)

राधा—(आश्चर्य से) एं, परेशानी उठाने ! (खड़ी होकर नम्रता से) आख़िर मुझसे बताने में क्या हर्ज है। तुम्हें मेरी सौगन्ध । बताओ, कौन-सा ऐसा काम आ पड़ा, बताओ। (वाचस्पति का हाथ पकड़ती है)

वाचस्पति—(राधा को खाट पर बैठाता हुआ और स्वयं बग़ल में बैठकर) देखो, आज आख़िरी मरतबा है, फिर समझाए देता हूँ। अब कभी चलते वक़्त न टोकना। जानती हो, यह अपशकुन है।

राधा—(नम्रता से) हाँ, ग़लती हो गई। मैंने यों ही पूछ लिया। हाँ, तो वहाँ क्या होगा ?

वाचस्पति—(समझाकर) अब कभो 'यों ही' न पूछ लिया करो। देखो, आज मुझे 'डिबेटिंग क्लब' में व्याख्यान देने जाना है। जानती हो, व्याख्यान देना बड़े साहस का काम है। जान हथेली पर लेनी पड़ती है, पसीना छूटने और शरीर काँपने लगता है। साँस की गति तीव्र हो जाती है। यह काम मामूली आदमियों के बश का नहीं। बड़े-बड़े नेता बड़ी तैयारी के साथ व्याख्यान-मंच पर जाते हैं। (ज़रा प्रसन्न होकर) बात यह है कि तुम औरत हो, इन बातों को क्या जानो। बड़ी हिम्मत और दिलेरी का काम है।

राधा—(आश्चर्य से) अच्छा, तब तो यह काम काफ़ी ख़तरनाक जान पड़ता है। (हाथ पकड़कर) तो ऐसे काम में क्यों हाथ डालते हो, न जाओ।

वाचस्पति—(ओज से) वाह, मैं तो अवश्य ही जाऊँगा। एक-से-एक बड़े आदमी आवेंगे। (समझाकर) देखो, आज तो मुझे अच्छी तरह भिड़ना है। जितने लोग आए होंगे, सबकी बोलती बंद कर दूँगा, समझी।

राधा—(कुछ व्यग्र होकर) नहीं, नहीं, तब तो आप हरगिज़ न जाइए। मुझे किसी से भिड़ना अच्छा नहीं मालूम होता। बाहर आपकी रक्षा कौन करेगा ?

वाचस्पति—न-न-न-न, अभी तुम समझीं नहीं, ह-ह-ह-ह ! भिड़ने का अर्थ तुम और ही कुछ समझ गईं। न-न-न-न, मैं किसी से वाक़ई कुश्ती लड़ने नहीं जा रहा हूँ। हाँ, कुश्ती होगी ज़बान की। ज़बानें ख़ूब चलेंगी।

राधा—(व्यग्र होकर) तब तो और भी ख़तरा है। तुम्हारी ज़बान क़ाबू में नहीं। ज़बान की लड़ाई में कहीं तुम्हारे हाथ-पाँव भी चलने लगे, तब ?

वाचस्पति—नहीं-नहीं, यह भी कोई बात है, चलेंगी ज़बानें, और लड़ने लगेंगे हाथ-पाँव ! भई वाह, आखिर औरत की जात ठहरी न ! क्या आसमान-ज़मीन का क़ुलावा मिलाया है। "भैंस बियानी है मोहबे माँ, पड़वा गिरा कलींजर जाय।' ह-ह-ह-ह-ह !

राधा—(अन्यमनस्क होकर) हाँ, औरत होना तो भाग्य में लिखा ही था। (उत्सुक होकर) अच्छा, वहाँ क्या होगा ? ज़रा मैं भी तो सुनूँ ?

वाचस्पति—(समझाकर) देखो, वहाँ व्याख्यान होगा। उसके लिये विषय रक्खा गया है 'भाषा का महत्व'। बड़ा विकट सवाल हल करना है।

राधा—नहीं, नहीं, सवाल कठिन नहीं है। जबान की लड़ाई तो है ही। मुझे पूर्ण विश्वास है, मौखिक युद्ध में आपके सामने कोई नहीं ठहर सकता। अच्छा, यह तो बताओ 'भाषा' है क्या चीज़?

वाचस्पति—ह-ह-ह-ह! अरे तुम्हें अभी यह भी नहीं मालूम? भई, यह चीज़ हलुआ, पूड़ी, कलाकंद, अमिरती, दहीबड़ा नहीं है। यह है बोलने वाली चीज़ अर्थात जबान। देखो, जैसे हिन्दोस्तान में हिन्दू-मुसलमानों की एकता की कोशिश हो रही है, उसी तरह हिन्दी-उर्दू ज़बानों की एकता का लोग प्रयत्न कर रहे हैं। मैं भी उसी में शामिल हो गया हूँ।

राधा—(उत्सुक होकर) आप कब से इस गिरोह में शामिल हो गए?

वाचस्पति—नई बात नहीं, अर्सा दो साल का हुआ। सच पूछती हो, तो पहले मैं संस्कृत के पक्ष में था, किन्तु दो-चार मित्रों के समझाने से मान गया। और अब, अब मैं संस्कृत और फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग इतनी सुन्दरता से व्याख्यान देते वक्त करता हूँ कि मुझे अपनी योग्यता पर आश्चर्य होता है। न जाने यह सम्मिलित भाषा अपने आप मुझे कैसे आ गई?

राधा—(आश्चर्य से) अच्छा, तो क्या बिना गुरु के आ गई ?

वाचस्पति—(हँसकर) ह-ह-ह-ह ! कैसा गुरु, कैसा चेला। तुमने सुना नहीं—

करत-करत अभ्यास के जड़-मति होत सुजान,
रसरी आवत-जात ते सिल पर परत निसान।

राधा—वाह, यहाँ सिल और निशान का क्या तुक ?

वाचस्पति—न-न-न-न, तुम अभी समझीं नहीं। तुक तो भिड़ाने से लगता है। जहाँ भिड़ाना चाहो, वहीं भिड़ा लो। देखो, सिल है मेरी ज़बान और लोढ़ा है दंत-पंक्ति ! सिल पर निशान होना यानी ज़बान का घिस जाना ! ह-ह-ह-ह ! भिड़ गया न तुक। (पीठ पर हाथ फेरकर) आख़िर तुम औरत हो न !

राधा—देखो, जल्दी लौटना, देर न करना।

वाचस्पति—हाँ-हाँ एक बात तो कहना ही भूल गया। क्लब में पुरुषों के सिवा स्त्रियाँ भी शामिल होंगी। इसी से मैं और भी जल्दी कर रहा हूँ। तुम तो जानती हो कि मैं ऐसी सभा सुसाइटी में कम जाता हूँ, जहाँ हमारे देश की महिलागणों का आगमन हो।

राधा—(कुछ चिंतित होकर) तुम्हें स्त्रियों से क्या मतलब ?

वाचस्पति—न-न-न-न, तुम अभी समझी नहीं। मेरे कहने का मतलब यह है कि जिस सभा में महिलागण शामिल होती हैं, वहाँ व्याख्यान देने-वाले में दुगना उत्साह उत्पन्न हो जाता है। सच बात तो यह है कि व्याख्यान देनेवाला ऐसी उड़ान भरता है

कि उसे आगे-पीछे, ऊपर-नीचे अगल-बगल की सुध ही नहीं रह जाती। सच कहता हूँ, इतहाम होजाता है इतहाम! (एकाएक खड़ा हो जाता है)

राधा—(कुछ रुष्ट होकर) तब तो जल्दी जाइए, सचमुच देर हो जाने की संभावना है।

वाचस्पति—(जल्दी-जल्दी कुरता पहनता हुआ) ओ-हो-हो-हो! वाक़ई बहुत देर हो गई। खूब याद दिलाया तुमने! अब तक मैं निकल गया होता। (टोपी ढूँढ़ता हुआ) बस, ऐन मौके पर नदारद हो जाती है। खूँटी पर टाँग देता हूँ, फिर भी न-जाने कहाँ कूदकर पहुँच जाती है। (क्रोध में) मिल जाती, तो अभी फाड़कर फेंक देता, चाहे नंगे ही सिर जाना पड़ता। (इधर-उधर फिर ढूँढ़ता है)

राधा—(उठकर टोपी देती हुई) अरे देखो, यहाँ रक्खी थी! और नहीं, तो टोपी ही से उलझ पड़े।

वाचस्पति—(टोपी सिर पर लगाकर दबाता हुआ) अच्छा, ले जम जा अच्छी तरह। अब सोते वक्त भी न उतारूँगा। देखता हूँ, फिर कहाँ जाती है।

राधा—अच्छा, जरा जल्दी लौटना।

वाचस्पति—(दरवाज़े की ओर बढ़ता हुआ) बस बस, चुप रहो, देर हो गई। मेरा इन्तजार न करना। जाना अपने हाथ, लौटना दूसरों के।

राधा—(अपने आप) क्या बताऊँ, न-जाने कैसे होते जा जा रहे हैं।

(वाचस्पति घर के बाहर निकल पड़ता है। राधा बड़बड़ाती हुई बाहर का दरवाजा बंद कर लेती है)

दूसरा दृश्य

स्थान—घर के बाहर का मार्ग

[वाचस्पति कुरता-टोपी पहने है। हाथ में छड़ी लिए है। सामने श्यामा घड़े-सहित पानी भरने को लिये आती हुई दिखाई पड़ती है।]

वाचस्पति—(क्रुद्ध होकर अपने आप) ओ हो, हुआ तो ग़ज़ब ! अब अवश्य कुछ हो कर रहेगा। औरत का टोकना कभी व्यर्थ नहीं जाता। (श्यामा के पास जाकर क्रोध में) क्यों री, तू इधर से क्यों निकली ? क्या तुझे पानी भरने के लिये यही वक्त था ?

श्यामा—(मुस्किराकर) मुझे क्या मालूम कि सरकार की सवारी आ रही है, नहीं मैं दो-चार मिनट और रुक जाती।

वाचस्पति—(हाथ मटकाकर) हाँ-हाँ, सरकार नहीं, तो और क्या ? क्या मैं ऐरा-ग़ैरा नत्थू-खैरा हूँ। मैं कितने ज़रूरी काम से जा रहा था, लेकिन चट से आव न देखा ताव, हंडी लेकर निकल पड़ी। तेरी एक पैसे की हंडी ने मेरे लाखों पर पानी फेर दिया, उल्लू कहीं की।

श्यामा—(आवेश में) जरा ज़बान सँभालकर बोलिए। मैं हंडी लेकर एक बार क्या, हज़ार बार निकलूँगी। कहीं के अक़-लातून आए हैं, पानी पीना छोड़ दूँ! गले में घंटी क्यों नहीं बाँध लेते। हुँ!

वाचस्पति—अब मैं ज़रूर घंटी बाँधूँगा। देखता हूँ, तू कैसे निकल आती है। देखूँगा तेरा हज़ार बार निकलना। रास्ता चलना बंद करा दूँगा।

श्यामा—(प्रसन्न होकर) सबसे अच्छा घंटा होगा। आवाज़ ज्यादा निकलेगी।

वाचस्पति—(नाराज़ होकर) हाँ-हाँ, घंटा, घंटा, घंटा। मैं घंटी-घंटा दोनों बाँधूँगा। मेरी इच्छा, इसमें तेरा क्या इजारा। मुझे निकलते देर नहीं कि चट से हंडी लेकर निकल पड़ी। प्यासों मरी जा रही थी। जरा-सा और रुकते नहीं बना।

श्यामा—अच्छा, अब ज्यादा खोपड़ी-भंजन न कीजिए, जाइए, जहाँ जा रहे हो।

वाचस्पति—(क्रोध में) जाऊँगा नहीं, तो क्या यहाँ बिस्तर लगाकर सोने आया हूँ। (इशारा करके) यह खोपड़ी-भंजन है, ज़बान में लगाम नहीं। एक तो अपशकुन कर दिया, दूसरे गुर्राती भी है। आवारा कहीं की। (बड़बड़ाता हुआ आगे बढ़ता है)

श्यामा—(अपने आप) कहाँ आज सबेरे-सबेरे इनका मुँह देखा। ईश्वर ही बचावे। (आगे बढ़ती है)

(वाचस्पति नीचा सिर किये हुए आगे बढ़ता है। इतने में किसी ने उसे नमस्कार किया)

वाचस्पति—(ग़ौर से देखकर, एकाएक क्रुद्ध होकर) हत्तेरे की ! (छड़ी तानकर) क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता, नहीं तो अभी तेरी मरम्मत कर देता। बस, अब तो हरगिज़ ख़ैरियत नहीं। दिल में आता है, तेरी दूसरी आँख भी फोड़ दूँ। नीच !

काना—वाह, मैंने तो नमस्कार किया, आप बड़बड़ाने लगे। क्या जमाना है। लीजिए, मैं जा रहा हूँ, मुझसे आपसे क्या मतलब ?

वाचस्पति—(गले में हाथ लगाकर) अरे दुष्ट ! बता, तू मुझे इस वक्त क्यों मिल गया ? किस काम से इधर निकल पड़ा ? तेरी कौन-सी शादी या गौना हो रहा है, जो तू पाँच मिनट भी अपने घर में न रुक सका। मेरा शकुन बिगाड़ दिया। फिर भी ऊपर से धौंस जमाता है कि मुझसे कुछ भी मतलब ही नहीं। तो फिर तेरा मतलब किससे है ? नाम और पता बता, उसकी भी खबर लूँगा। वह कौन माई का लाल है, जिसने तुझे इसी वक्त बुलाया है।

काना—आप तो बेकार की हुज्जत करते हैं। मैं अपने रास्ते जा रहा हूँ।

वाचस्पति—(क्रुद्ध होकर) हूँ, यह हुज्जत है ! एक तो आँख के सामने दिखाई पड़ गया, फिर भी कहता है, मैं अपने रास्ते

जा रहा हूँ। (गला पकड़कर) अच्छा बता, तुझे इधर से आने के लिये किसने कहा? तू इधर से निकला क्यों? (हाथ मलकर) ओहो, सचमुच अब खैरियत नहीं।

(एकाएक एक राहगीर पास आकर खड़ा हो जाता है)

वाचस्पति—(राहगीर पर क्रुद्ध होकर) तू क्यों यहाँ आकर खड़ा हो गया? क्या यहाँ नाच हो रहा है या कठपुतली का तमाशा! अपना रास्ता पकड़।

काना—(राहगीर से) देखो न भैया, मैंने तो नमस्कार किया, और यह मेरे पीछे पड़ गये। मैं अपने रास्ते जा रहा था।

वाचस्पति—(बात काटकर) तेरे नमस्कार की ऐसी-तैसी। तेरा जो नमस्कार ले, उसपर थू है! तू अपने रास्ते जा रहा था, तो क्या मैंने रोक लिया? (गला पकड़कर) अच्छा, रोक लिया तो ले, रोक लिया। मैं भी रुकता हूँ, तू भी रुक। देखता हूँ, कब तक रुकता है? (छोड़कर) दुष्ट कहीं का, शकुन बिगाड़ दिया!

राहगीर—(काने से) जाओ भाई, जाओ, यह तो होता ही रहता है। (वाचस्पति से) जाइए, सरकार यह कोई नई बात नहीं। अरे, सुना नहीं, गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है—

"मूँदहु आँखि, कतहुँ कोउ नाहीं"

आप ही सँभाल के चलते। वह तो काना है ही। (काना

आगे बढ़ता है। वाचस्पति उसे घूर-घूरकर बड़बड़ाता है। फिर कुछ सोचकर, आँखें मूँदकर आगे बढ़ता है)

वाचस्पति—(आप-ही-आप) हुँ, वो दुष्टो! अब दिखाई पड़ो, तब जानें! 'मूँदहु आँखि; कतउँ कोउ नाहीं।' राहगीर ने न देखने का अच्छा नुस्खा बताया। हैरान कर डाला। परेशान हो गया। (आगे बढ़ता हुआ) कितना वक्त खराब हो गया। किसी के यहाँ पानी ही नहीं, कोई अपनी आँख फोड़े बैठा है। क्या बताऊँ। एक-एक करके सब एक साथ आगे आने लगे। जैसे सलाह-मसौदा करके सब-के-सब चल पड़े हों। नाक में दम कर दिया!

(एकाएक वाचस्पति रुक जाता है। वह आँखें मूँदे है। उसके कान में निम्न-लिखित बातें सुनाई पड़ती है)

एकस्त्री—(दूसरी से) देखो न बहन, आँख होते हुए भी दोनों आँखें मूँद रक्खी हैं।

दूसरी—हाँ, कुछ जान तो ऐसा ही पड़ता है। मालूम होता है, सनकी है, नहीं तो आँखें क्यों मूँद लेता?

तीसरी—अरे नहीं, यह बना हुआ है बना! किसी मतलब से आँखें मूँदे हुए है।

पहली—क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जता। आगे कुआँ है। बढ़ा नहीं कि धड़ाम से गया।

दूसरी—अभी तो यह इधर ही से गया था, तब तो आँखें खोले था। इतनी देर में इसने आँखें क्यों बन्द कर लीं।

तीसरी—अच्छा, अभी इधर से यह गया भी था। तो इसके लिये दुनिया गोल है। नहीं, यहाँ कैसे आ निकलता।

पहली—अरे, यह वाचस्पति हैं। सामने के मकान में रहते हैं।

दूसरी—अरे हाँ-हाँ, वही हैं। अच्छा, चुप रहो, कौन इनके मुँह लगे। अभी झायँ-झायँ होने लगेगी।

(वाचस्पति स्त्रियों की बातें सुनकर आपे से बाहर हो जाता है और आँखें खोल देता है। सामने स्त्रियों को कुएँ पर खड़ी देखकर आग-बबूला हो जाता है।

वाचस्पति—(स्त्रियों से) तुम लोग यहाँ क्यों पंचायत लगाए हुए हो। यह कचहरी नहीं, कुआँ है, समझीं ? हुँ !

एक स्त्री—जाइए, आपको क्या करना है, हम लोग पानी भरने आई हैं।

वाचस्पति—(झपटकर) बड़ी पानी भरनेवाली ! क्या कुआँ तुम लोगों ने खुदवाया है ? और किसी कुएँ पर जगह न थी ?

दूसरी स्त्री—बस, चुप रहिए, बेकार हुज्जत न कीजिए—जाइए।

वाचस्पति—तुम लोग सब-की-सब आवारा हो। घर में मौक़ा न मिला, तो कुएँ पर ही कचहरी लगा दी। मानो आज दुनिया के सारे मुक़द्दमों का फ़ैसला यहीं होगा। जहाँ देखो, घंटियाँ लिए खड़ीं !

पहली—(वाचस्पति के घर की ओर इशारा करके) जाइए, आपकी श्रीमती तो अभी ढूँढ़ रही थीं।

वाचस्पति—(घर की ओर बढ़ता हुआ) आवारा कहीं की ! न-जाने किस नक्षत्र में इनका जन्म हुआ है। जहाँ देखो, पीछे पड़ी रहती हैं।

(वाचस्पति अपने घर के बाहर जाकर बन्द दरवाजे क कुंडी बड़े ज़ोर से खड़खड़ाता है। राधा किवाड़ खोलती है और सामने वाचस्पति को ग़ुस्से में खड़ा हुआ पाती है)

राधा—(आश्चर्य से) अरे, बड़ा जल्दी व्याख्यान देकर लौट आए ?

वाचस्पति—(घर में घुसता हुआ) हट जाओ सामने से। लौट न आऊँ, क्या करूँ। (चारपाई पर लेटकर) अरे बाप रे, मार डाला ! दो-दो वारदातों से बच आना खेल न था। भगवान् ने रक्षा की।

राधा—(व्याकुल होकर) क्या कहीं चोट तो नहीं आई ? कहाँ वारदात हो गई ?

वाचस्पति—(क्रोध में) यह सब तुम्हारी ही करतूत है। चलते ही वक्त, टोक दिया, तो कैसे पूरा पड़े। (स्वागत) हरे राम, आज व्याख्यान भी न दे सकूँगा। भाषा के संबंध में दो साल तक की गई मेहनत अकारथ गई। हाय राम का करूँ ! दुष्ट श्यामा और काने को पाता, तो नाक-कान काट लेता, चाहे फाँसी ही हो जाती।

राधा—आख़िर हुआ क्या, बताओ तो सही।

वाचस्पति—(बैठकर) अरे, चला जा रहा था कि तुम्हारी पड़ोसिन ख़ाली घड़ा लिए पानी भरने आती हुई दिखाई पड़ी। फिर किसी तरह आगे बढ़ा, तो एक काना मिल गया। ख़ैर, फिर आँखें मूँदकर बढ़ा, तो कुएँ में गिरते-गिरते बचा, और यहाँ वापस आ गया। क्या बताऊँ, अभी पहुँचते पहुँचते न-जाने क्या-क्या हो।

राधा—बस, इतनी ही-सी बात है। (उठकर दही और शीशा लाती है) अच्छा, दही खा लो, और शीशे में मुँह देख लो, बस, सारा अपशकुन ग़ायब !

वाचस्पति—सो कैसे ?

राधा—(प्रसन्न होकर) शकुन-विचारकों का ऐसा ही कहना है। अपशकुन को शकुन बनाने के दो उपाय हैं—दही खाना और शीशा देखना। (हँसती है)

वाचस्पति—(प्रसन्न होकर) अच्छा, शकुन के ये ही चिन्ह हैं। तब तो बड़ी खुशी की बात है।

राधा—हाँ-हाँ, दही खाओ और शीशा देखो, जाओ; नहीं व्याख्यान न दे सकोगे।

वाचस्पति—(मुस्किराकर) तुम तो बहुत ही अच्छी हो। सब समझती हो। (वाचस्पति दही खाकर, शीशा देखकर घर के बाहर हो जाता है। राधा दरवाज़ा बन्द करके भीतर चली जाती है)

तीसरा दृश्य

स्थान—डिबेटिंग-क्लब का हॉल

[हॉल में एक ओर डायस पर कुछ सज्जन बैठे हैं। नीचे श्रोताओं की मंडली बैठी है। एक ओर कॉलेज के विद्यार्थियों का गिरोह है, दूसरी ओर कई महिलाएँ भी बैठी हैं। व्याख्यान-वाचस्पति व्याख्यान दे रहा है।]

वाचस्पति—(इशारा करके) भाइयो ! भारतवर्ष-हिन्दोस्तान में मेल-इत्तफ़ाक़ की ज़रूरत-आवश्यकता है। (दोनों हाथ मिलाकर) ताली दोनों हाथों-दस्तों से बजती है। ज़मीन-धरती और गगन-आसमान का मेल-इत्तफ़ाक़ भी हो सकता है, यदि-अगर आप लोग सम्मति-राय करें। (गर्दन उठाकर) फ़ारसी का कवि-शायर फ़िरदौसी बड़ा प्रसिद्ध-मशहूर था। उसने कविता-शायरी में लिखा है—"एकुम् अंबोह, दोयम् कंबोह।" आदि-वग़ैरह।

एक श्रोता—(दूसरे के कान में) यह क्या ऊट-पटाँग बक रहे हैं। कहाँ का ईंट, कहाँ का रोड़ा !

दूसरा—(पहले के कान में) हाँ, मैं भी चौकन्ना हूँ कि भाषा के महत्त्व और अंबोह-कंबोह से क्या मतलब !

वाचस्पति—(श्रोताओं से) भाइयो-बिरादरो ! यह आपस में कानाफूसी की जगह-स्थान नहीं है। ग़ौर से सुनिए-श्रवण कीजिए। (महिलाओं की ओर रुख़ फेरकर) बहनो, हाँ-हाँ, मैं अभी-अभी मेल-इत्तफ़ाक़ की बात कर रहा था। मुझे अत्यन्त

सख़्त दुःख-अफ़सोस है कि आपके पतियों-मियाओं और आप लोगों में बेमेल-नाइत्तिफ़ाक़ रहता है। यह बड़े लज्जा और शर्म की बात है। मैं चाहता हूँ, आप लोग स्वार्थ-ख़ुदग़र्ज़ी छोड़कर मेल-इत्तफ़ाक़ कर लें; नहीं तो नरक-जहन्नुम में भी आप लोगों को जगह-स्थान न मिलेगा-प्राप्त होगा। आप लोग अपने पतियों-मियाओं से पूछें-दरियाफ़्त करें। वे प्रकट-ज़ाहिर करें कि वे किस प्रकार-तरह का इत्तफ़ाक़-मेल चाहते हैं। (एक हाथ पर उँगली बजाकर) देखो, मेल इत्तफ़ाक़ संसार-दुनिया में मूल्यवान-बेशक़ीमती चीज़ है। (ऊपर मुँह करके) हाँ-हाँ ! क्या ही चमत्कृत और रौनक़ बख़्शनेवाली चीज़ है। (एकाएक औरतों में कानाफूसी होती है)

एक स्त्री--(दूसरी के कान में) आख़िर यह क्या बक रहा है ? पति-पत्नी का वर्णन हो रहा है या भाषा के महत्त्व का ?

दूसरी--(धीरे से) हाँ, इसे हम लोगों के पतियों की नाइत्तिफ़ाक़ी से क्या मतलब ? कुछ अजीब खोपड़ी का व्यक्ति है।

तीसरी—(दूसरी के कान में) कहते हैं, यह व्याख्यान-वाचस्पति हैं। न-जाने कहाँ से फोकट की उपाधि पा गया !

पहली—(कान में) अजी, चलो चलें, यहाँ बैठना व्यर्थ है।

दूसरी—नहीं, नहीं, ज़रा आगे तो सुनो, अभी जाने क्या-क्या कहेगा। ठहरो, अभी चलती हैं।

वाचस्पति (महिलाओं से) भई, यह तो मामला गड़बड़-शड़बड़ है। न-न-न-न, शांति से बैठो। (समस्त श्रोताओं को

संबोधित करके) भाइयो ! यह तक़रीर-व्याख्यान देने का भवन-हॉल है। यहाँ बड़े इतमीनान से बैठना चाहिए। (दोनों हाथ पीछे करके) देखिए, ज़माना-वक्त बड़ा नाज़ुक है। इत्तिफ़ाक़-मेल की ज़रूरत-आवश्यकता है। हर साइड में, मौक़ा पर एक मार्ग-रास्ता खुला हुआ है, वह है इत्तफ़ाक़। बिना इत्तफ़ाक़-मेल से कोई काम नहीं हो सकता। आप लोग समझ लीजिए। चाहे औरत-स्त्री हो या मर्द-पुरुष। हमें भेद से कोई वास्ता-मतलब नहीं। मैं तो जानवरों-हैवानों तक में इत्तफ़ाक़ चाहता हूँ, अगर पेड़-पौदों में भी हो सके, तो स्वराज्य बहुत जल्द-शीघ्र हासिल-प्राप्त हो सकता है देखिए......

एक श्रोता—(खड़े होकर, बात काटकर) वाचस्पतिजी, क्षमा कीजिए। आपके व्याख्यान का क्या मतलब है ? आप अपने विषय से अलग बोल रहे हैं, जिसकी यहाँ क़तई ज़रूरत नहीं।

दूसरा श्रोता—(खड़े होकर) हाँ-हाँ, जितनी बातें आप बोल रहे हैं, सब बेकार हैं। अपने विषय पर बोलना हो, तो बोलिए।

एक विद्यार्थी—(खड़े होकर) आपकी सब बातें अंटसंट हैं।

दूसरा विद्यार्थी—(खड़े होकर) हाँ-हाँ, बिलकुल अललटप हैं। यह व्याख्यान भाषा के महत्त्व पर है, या मेल-इत्तफ़ाक़ के महत्त्व पर।

वाचस्पति (चौकन्ने होकर श्रोताओं से) भाइयो-बिरादरो ! शांत हो जाइए। हें-हें-हें-हें, आप लोग ठीक-सत्य कह रहे हैं। लेकिन-परन्तु अभी तो मैंने अपने व्याख्यान-तक़रीर की भूमिका-

दीबाचा-मात्र ही आप लोगों के सम्मुख-रूबरू रक्खी है। भाषा पर तो अब मैं आगे बोलूँगा। हें-हें-हें-हें, आप भाई-बहनों ने कुछ और ही समझ लिया।

(आवाज़ आती है—कहिए, कहिए, वक्त खराब हो रहा है)

वाचस्पति (जल्दी में) जी-जी-जी-जी, हाँ, मैं कहता ही हूँ।

एक विद्यार्थी (धीरे से) जीजी का न बुलाइए साहब, कहिए, जो कुछ कहना हो। (मुस्किराता है)

वाचस्पति (रूमाल से मुँह पोंछकर) जलसा हाज़रीन, भाइयो और सदर सभापतिजो ! (आवाज़ आती है—सभापति कौन है) ख़ैर-ख़ैर, कोई बात नहीं। आप लोगों ने नख़लिस्तान का नाम सुना होगा। जिस प्रकार-तरह अफ़ग़ानिस्तान, बिलो-चिस्तान, मुग़लिस्तान और हिन्दुस्तान प्रसिद्ध-मशहूर हैं, उसी तरह-प्रकार नख़लिस्तान भी एक बड़ा सूबा है। वहाँ के बाशिन्दे-निवासी शुद्ध संस्कृत और फ़ारसी बोलते हैं। दोनों भाषाएँ-ज़बानें जब मिलती-इकट्ठा होती हैं, तो वह नफ़ासत-माधुर्य और दिलेरी-वीरता उत्पन्न-पैदा होती है कि वाह-वाह ! क्या बात है !

एक श्रोता (खड़े होकर) क्यों साहब, नख़लिस्तान दुनिया के किस पर्दे में आबाद है ?

वाचस्पति (डाँटकर) बस, बस, बीच में मत बोलिए। ज़बान बन्द कीजिए। ज़्यादा गड़बड़ कीजिएगा, तो मैं चल दूँगा। आप लोग मुझे जानते-पहचानते नहीं ! (क्रोध में नाक सिकोड़ता है)

(कहिए, कहिए की आवाज आती है)

वाचस्पति (जोर से) हाँ-हाँ, सुनिए, मैं कहता हूँ। मैं भागनेवाला नहीं। हाँ, भाषा-जबान के बारे-सम्बन्ध में मुझे सिर्फ-केवल यह कहना है कि आप लोग संस्कृत-अरबी-फ़ारसी को तो मिलाइए, लेकिन अँगरेजी जबान को भी उसी में मिला लीजिए। मेरी तो मुतलक़-निश्चित राय है कि फ्रेंच-भाषा-जबान को भी इन्हीं जबानों के साथ मिला लेना चाहिए, क्योंकि आजकल योरप की यही इंटरनैशनल लैंगवेज है। मैं तो बराबर इसी कोशिश-प्रयत्न में हूँ। देखिए इत्तफ़ाक़ हो जाय तो क्या बात है।

एकश्रोता—(खड़े होकर) मेरी समझ में हिंदी-उर्दू के मेल से भाषा का महत्त्व बढ़ सकता है यह आप क्या कहते हैं।

वाचस्पति—(बिगड़कर) मैंने कह दिया कि बीच में कोई न बोले। फिर न-जाने क्यों बोल दिया जाता है। अफ़सोस-दुःख है। ऐसा कीजिएगा तो मैं चला जाऊँगा।

दूसरा श्रोता—(खड़े होकर) आप जाइए नहीं, लेकिन ग़लत बात तो न बतलाइए। सचमुच बताइए, भाषा की उन्नति कैसे होगी।

वाचस्पति—(नाराज होकर) उन्नति हो, चाहे न हो। मैं इसका जिम्मेदार नहीं। जो ठीक है, मैं तो वही कहूँगा। भाषा जो असली-मुख्य है, वह नख़लिस्तान में बोली जाती है। अच्छा

मैं आप लोगों से बहुत कुछ कह चुका। अब मैं अपनी बहनों से भी कुछ निवेदन कर दूँ।

('ज़रूर, ज़रूर' की आवाज़ आती है)

वाचस्पति—(रूमाल से मुँह पोंछकर और मूछों को सीधा करके) बहनों, मैंने अभी कुछ पहले आप लोगों को इत्तफ़ाक़ की बात बतलाई है। देखिए, भारतीय भाषाओं में इत्तफ़ाक़ हो रहा है। मैं तो ऐसा समझता हूँ, आप लोग वाक़ई सचमुच शुद्ध-भाषा ज़बान बोलती हैं। (आँख मूँदकर, मुँह ऊपर करके, भावावेश में) वाह-वाह ! बहनों ! मैं आपके इस इत्तफ़ाक़ की कितनी तारीफ़-प्रशंसा करूँ। आप लोग सचमुच देवियाँ हैं। अ-ह-ह-ह ! मैं तो आप लोगों की वीरता देखकर आप लोगों पर न-जाने क्यों आशिक़ हो गया हूँ।

(चुप रहो' 'चुप रहो' की आवाज़ आती है।

एक स्त्री—(खड़ी होकर,) बस, बस, ज़बान बंद कीजिए, शर्म नहीं आती आपको दूसरों की बहू-बेटियों से ऐसी बातें करते हुए ?

दूसरी—(अन्य स्त्रियों से) चलो जी, चलें; यह तो शोहदों की मीटिंग है। अनाप-शनाप बकते हैं।

स्त्रियाँ उठकर हाल के बाहर चली जाती हैं। पुरुष भी ताली बजाकर उठ खड़े होते हैं, और 'शेम', 'शेम' कहते हुए हाल के बाहर हो जाते हैं। कुछ विद्यार्थी व्याख्यान-वाचस्पति के पास खड़े रह जाते हैं)

विद्यार्थी— (हँसकर) वाचस्पतिजी, आपने यह क्या कह डाला ? सब-के-सब चले गए।

वाचस्पति—(आश्चर्य से) एं ! मैंने क्या कह डाला ? कुछ तो नहीं कहा।

विद्यार्थी—आपने औरतों से कहा कि मैं तुम लोगों पर आशिक हो गया हूँ। (बड़े जोर से हँसता है)

वाचस्पति— (आश्चर्य से) ऐं! आशिक़! क्या बेजा, प्रेमी की फ़ारसी आशिक़ है। वाह, इसमें बिगड़ने की क्या बात थी ! मैंने तो ग़ैर वाजिब बात नहीं कही।

(विद्यार्थी बड़े जोर से हँसते हैं। व्याख्यान-वाचस्पति उनका मुँह देखता हुआ भौचक-सा खड़ा रहता है)

विद्यार्थी—(हाथ पकड़कर) वाचस्पतिजी, जो होना था, हो ही गया। अब आप हमारे यहाँ कुछ उपदेश दीजिए।

वाचस्पति (ठेलकर) न-न-न-न, भाई, बहुत उपदेश दे चुका अब कान पकड़ता हूँ।

विद्यार्थी (आग्रह-पूर्वक) नहीं, जरूर चलिए। (हाथ पकड़-कर आगे ले चलता है, अन्य विद्यार्थी पीछे-पीछे चलते हैं)

वाचस्पति—न-न-न-न, बेकार मुझे परेशान न करो। मैं न जाऊँगा। वहाँ भी कुछ मुँह से निकल पड़ेगा, तो आफ़त हो जायगी।

(सब विद्यार्थी 'नहीं-नहीं' कहते हुए वाचस्पतिजी को लेकर होस्टल की ओर चल देते हैं)

चौथा दृश्य

स्थान—बोर्डिङ्ग का एक कमरा

[कमरे में दो चारपाइयाँ बिछी हैं। उन पर कई लड़के बैठे हैं। एक ओर टेबिल लगी है। एक कुर्सी भी रक्खी है। वाचस्पति कुर्सी पर बैठा है। लड़के एक दूसरे से हँसी करते और हँसते हैं। वाचस्पति भी बातें करता जाता है।]

एक विद्यार्थी (वाचस्पति से) क्यों साहब, इस साल कांग्रेस के प्रेसिडेंट श्रीसुभाषचन्द्र बोस का व्याख्यान कैसा रहा ?

वाचस्पति (कुछ उत्तेजित होकर) मैंने ५१ कांग्रेस के सभापतियों के भाषण पढ़े हैं, लेकिन सुभाष बाबू के समान किसी ने अब तक भाषण नहीं दिया। मैंने उनके व्याख्यान को पूर्णतया पढ़ने में बारह घंटे मुतवातिर खर्च किए हैं। खूब स्टडी की है। वाह-वाह, ऐसा वीरता-पूर्ण व्याख्यान क्या कोई दे सकता है ? (खड़े होकर) अच्छा, अब आप लोग ख़ामोश रहिए। बीच में ज़रा भी कोई न बोले। मैं आप लोगों को समझाता हूँ। सुनिए।

दूसरा विद्यार्थी—मगर लिबरल कहते हैं कि व्याख्यान अच्छा नहीं था।

वाचस्पति (उँगली दिखाकर) कह दिया कि ज़बान बन्द करो। क्यों बीच में बोले ? लिबरल क्या समझ सकते हैं ? उनके दिमाग़ तो चरने चले गए हैं। लिबरल कुछ नहीं जानते। मैं जानता हूँ, सुभाष बाबू का व्याख्यान कैसा था। देखो, जो

सुभाष बाबू के व्याख्यान की निन्दा करते हैं, वे कुछ नहीं जानते। लिबरल तो डूब गए। उन्हें कौन पूछता है!

तीसरा विद्यार्थी—वाचस्पतिजी, आप बिलकुल ठीक कहते हैं। सुभाष बाबू के मुकाबले किसी भी सभापति का व्याख्यान न था। मैं आपका समर्थन करता हूँ।

वाचस्पति (क्रुद्ध कोकर) क्यों बीच में बोले? तुम कुछ नहीं जानते। अब मैं कहता हूँ कि सुभाष बाबू का व्याख्यान अच्छा नहीं था। तुमने क्या पढ़ा है, कुछ भी नहीं। देखो, हमारे भाई कुछ मुसलमान नाराज़ हैं।

विद्यार्थी—हाँ हाँ, मैं भी यही समझता हूँ। आप ठीक कहते हैं।

वाचस्पति--(विद्यार्थी की ओर रुष्ट होकर) एक बार नहीं, सौ बार कह दिया, चुप रहो। क्यों बीच में बोल देते हो? तुम्हें क्या मालूम कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह ठीक ही है? मैं बिलकुल ठीक नहीं कह रहा हूँ। सुभाष बाबू का व्याख्यान बहुत ही अच्छा था। अगर मैं कहता हूँ कि अच्छा नहीं था, तो मैं बेवक़ूफ़ हूँ। मुझे कमरे से निकाल दो। मैं क्यों कह गया कि कांग्रेस-प्रेसिडेंट का व्याख्यान अच्छा नहीं था। मैं अव्वल नम्बर का अहमक़ हूँ। सोचिए, आप लोग सोचिए। विचार कीजिए, मनन कीजिए। मेरे कहने पर मत जाइए।

विद्यार्थी—आप तो विचित्र आदमी हैं। एक ही बात को पहले अच्छा कहते हैं, फिर बुरा।

वाचस्पति (नाराज होकर) कह दिया, बीच में दखल मत दो। दुनिया में अच्छा-बुरा दोनों चलता है। इस मामले में मैं लिबरल-पथ को मानता हूँ। मैं कभी 'इक्स्ट्रीम' पर नहीं जाता। बिना बुराई कोई अच्छाई नहीं आती, और बिना अच्छाई के बुराई नहीं होती। कार्य-कारण-संबन्ध दोनों का है। मेरा-इत्तफ़ाक़ यों ही होता है। मेरे लिये दुनिया में सब कुछ अच्छा है, और सभी कुछ बुरा। हमें क्या लेना-देना। कल को मर जाना है। न यश के साथी, न अपयश से वैर। मैं तो गोस्वामीजी की इस चौपाई का फ़ालोवर हूँ—

कोउ नृप होइ, हमें का हानी ;
चेरि छाँड़ि ना होउब रानी।

विद्यार्थी—हाँ-हाँ, ठीक कहते हैं आप। अच्छा, इस मामले को छोड़िए। यह बताइए कि आजकल कविता कैसी होनी चाहिए।

वाचस्पति (कुछ प्रसन्न होकर) हाँ, यह बात तुमने माक़ूल पूछी। यह बोलना बेजा नहीं हुआ। भाई, मैं तो पुराना कवि हूँ। मैंने कई महाकाव्य लिखे, लेकिन सब-के-सब न जाने कहाँ चले गए। कोई कहता है, चोर चुरा ले गए, कोई कहता है, जल गए, कोई कहता है, संत तुकाराम के पुण्य ग्रंथ की भाँति अंतर्धान हो गए। मैं (प्रसन्न होकर) शृंगार-रस का प्रेमी हूँ। मैं बूढ़ा हो गया हूँ, लेकिन मुझमें शृंगार-रस वैसे ही वर्तमान है, जिस

प्रकार 'घट-घट-व्यापक राम।' हिंदी के पुराने साहित्य में परकीया का वर्णन खूब हुआ है, और होना भी चाहिए। स्वकीया का वर्णन तो घट-घटवासी है। रोज़ ही होता है। परंतु परकीया वर्णन हमारे शृंगारी कवियों का अपना मन है, अमर रुचि है।

एक विद्यार्थी—अच्छा, यह तो बताइए कि छायावाद के बारे में आपकी क्या राय है ?

वाचस्पति—(हँसकर) देखो भई, भद्दे शब्दों का प्रयोग मत करो। दुःख है, आप लोग विद्यार्थी हैं ! हाँ भई, 'वाद' से मैं तो घबराता हूँ। फिर 'बादी' तो बड़ा भारी रोग है। सारा शरीर फूल जाता है। भई, छायावादी कविताएँ मेरी समझ में नहीं आतीं। सच पूछिए, तो मैं हिन्दी में डिक्टेटरशिप चाहता हूँ। जैसे जर्मनी में हिटलर और इटली में मुसोलिनी ! तभी यह छायावादी कविता का रास्ता साफ़ हो सकता है।

विद्यार्थी—फिर आप ही डिक्टेटर क्यों नहीं बन जाते ?

वाचस्पति—वाह, अगर यह हो जाय, तो एक ही दिन में बधिया न बैठा दूँ, तो मेरा नाम व्याख्यान-वाचस्पति नहीं। इन लोगों ने अपने को समझ क्या रक्खा है।

विद्यार्थी—(मुस्किराकर) हाँ, आप तो राजनीति, साहित्य, सभी का नेतृत्व कर सकते हैं !

वाचस्पति—(प्रसन्न होकर) हाँ-हाँ, क्यों नहीं। मैं तो सब कुछ कर सकता हूँ, लेकिन इस देश में योग्य आदमियों की क़द्र

नहीं। क्या करूँ, कभी-कभी क्रांतिकारी बन जाने की इच्छा होती है, लेकिन……

विद्यार्थी—(बात काटकर) क्या आप जेल से डरते हैं ?

वाचस्पति—नहीं-नहीं, जेल से डरने की कोई बात नहीं, लेकिन-ज़रा कुछ सोचकर काम करता हूँ। और कोई आगे बढ़ता नहीं, तो मैं ही बढ़ूँगा। (कुछ सोचकर) हाँ-हाँ, मैं आपसे सिर्फ़ एक बात कहूँगा, ज़रा शांत रहिए।

(आवाज़ होती है—'हाँ-हाँ, कहिए')

वाचस्पति—(मुँह ऊपर करके, आँख मूँदकर) आप लोग युवक हैं। देश का, दुनिया का यानी होल वर्ल्ड का ख़याल कीजिए। ओहो, संसार किधर जा रहा है। जर्मनी ने आस्ट्रिया को ले डाला, मुस्लिम लीग हवाई घोड़े पर उछलती चली जा रही है। भाइयो, आँख खोलिए।

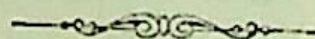
(विद्यार्थी आपस में कानाफूसी करके कमरे के बाहर हो जाते हैं। वाचस्पति अपने आप कहता जाता है)

युवको, अब जागो। आप लोग यहाँ बैठे हैं, क्या काम करते हैं। अपने मा-बाप का रुपया व्यर्थ उड़ा रहे हैं। राजनीति और साहित्य का उपकार कीजिए। ऐसा कीजिए कि क्रांति मच जाय। संसार तुम्हारी तरफ़ देखने लगे। हलकंप मच जाय। बिजली गिर पड़े। बादल कड़कड़ाने लगें। (एकाएक बाहर से तालियों की ध्वनि सुनाई देती है, और 'हियर', 'हियर' का शब्द

होता है। वाचस्पति आँखें खोल देता है। सामने किसी को न देखकर कमरे से बाहर बड़बड़ाता हुआ निकलता है)

वाचस्पति—(क्रोध में) नालायको ! विद्यार्थी हैं ! विद्या पढ़ रहे हैं। अब मैं यहाँ थूकूँगा भी नहीं। (बोर्डिंग से बाहर निकलते हुए) माँ-बाप का रुपया खराब कर रहे हैं। मुझे वेवकूफ़ बनाने के लिये बुलाया था। आवारो (तालियों की ध्वनि दुबारा सुनकर) दुष्टो, अब मैं अपनी सूरत न दिखाऊँगा। अब की बार व्याख्यान तुम्हीं लोगों के खिलाफ़ दूँगा, चाहे जेल ही जाना पड़े। मैं हरगिज़ नहीं छोड़नेवाला। ज़रूर व्याख्यान दूँगा। यदि न दिया तो मेरा नाम 'व्याख्यान-वाचस्पति' नहीं।

(व्याख्यान-वाचस्पति बोर्डिंग से बाहर निकलकर बड़बड़ाता हुआ घर की राह लेता है। लड़के तालियाँ बजाते हैं)



घर—बाहर

पहला दृश्य

(स्थान—पंचानन का मकान)

(पंचानन समाज सुधारक हैं। अपनी कोठरी में चटाई पर बैठे हैं। कोठरी लिपी-पुती स्वच्छ है। पास में उनके मित्र सदानंद बैठे हैं।)

सदानंद—पंडित जी, आज टाउन हाल में स्त्रियों के सुधार पर आप का व्याख्यान होने वाला है न ?

पंचानन—(संभल कर) हां भाई, शहर के कुछ लोगों का आग्रह है कि मैं एक ऐसा व्याख्यान दूं कि स्त्री जाति के सुधार में एक नया भ्रम उत्पन्न हो जाय।

सदानंद—(मुस्करा कर) अच्छा, यह तो बड़ी अच्छी बात हो। आप से बढ़ कर इस नगर में समाज-सुधारक कौन है ? लेकिन

महाराज ऐसी वक्तृता दीजिए कि कट्टर पंथियों के दिलों में चूहे कूदने लगें।

पंचानन—(गर्व से गर्दन ऊंची करके) हां-हां, क्यों नहीं, ऐसा तो होगा ही। तो क्या सचमुच मेरे व्याख्यान की बड़ी धूम है ?

सदानंद—वाह, व्याख्यान के संयोजक ने तमाम नगर में डुग्गी पिटवा दी है। आर्य समाज, सनातनधर्म और अछूत सभा के लोगों को भी निमंत्रित किया गया है। कालेज के विद्यार्थी भी अच्छी संख्या में आवेंगे।

पंचानन—(कुछ सोच कर) हां, यह तो अच्छा ही है, लेकिन सभा में कोई गोलमाल तो न होगा। भाई, कालेज के लड़कों से बहुत डरता हूँ। बड़े बकवादी होते हैं, व्यर्थ की बहस में पड़ना अपना समय नष्ट करना है।

सदानंद—(तनिक धीरे से) पंडित जी, आप इतना घबराते क्यों हैं। कालेज के विद्यार्थी हौवा तो होते नहीं। (खाँस कर) आप ऐसी दुरजोश और धड़ल्ले की स्पीच दीजिए कि सब लोग ताकते रह जांय। कोई बोलने लगे तो उस पर गौर ही न कीजिए। मानो आप सुन ही नहीं रहे हैं। फिर यदि गड़बड़ हो तो 'आर्डर' 'आर्डर' कह दीजिए। वे आप से आप चुप हो जायँगे।

पंचानन—(मित्र के कंधे पर हाथ रख कर) भई, तुम हो बड़े बुद्धिमान ! अक्ल से बात करना खूब जानते हो। लेकिन

आर्डर-आर्डर कहने से वे चुप क्यों हो जायेंगे ?

सदानंद—विद्यार्थियों को इस शब्द के सुनने की रोज की आदत है। और जरा दुनियादारी भी तो समझना चाहिए। जहां आपने 'आर्डर' कहा तहां आपके प्रति उनकी श्रद्धा बढ़ जायगी। वे समझ जायेंगे कि लोगों को काबू में करने की कला आप भांति भांति की जानते हैं।

पंचानंन—हां, जब मैं अपनी ही बात कहूँगा और किसी की कुछ सुनूँगा ही नहीं तो मेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है ?

सदानंद—हां हां, और क्या, संस्कृत साहित्यिक प्राचीन पंडित चाणक्य भी अपने नीति-दर्पण में ऐसा ही कहता है। 'अपनी कहे दूसरो की न सुने।' फिर स्त्रियों के मामले में आपके सामने किसी को कुछ कहने का क्या अधिकार है ?

पंचानन—(गरम होकर) हाँ-हाँ, किसी को बोलने का क्या अधिकार ? केवल विशेषज्ञ ही बोल सकता है। बिलकुल ठीक। (भावभंगी से) किसी को बोलने का क्या अधिकार। सोलह आने की बात कही।

(पंचानन की पत्नी देविका का घूंघट मारे हुए आना। उस की धोती कुछ मैली है। हाथ-पैर में बुन्देलखण्डी कड़ा पहने है)

देविका—(धीरे से) चलिए, खिचड़ी तैयार है।

पंचानन—(क्रोधित हो वक्र दृष्टि से उसकी ओर देखकर) यहां क्यों घुसी आ रही है। देखती नहीं है आदमी बैठे हैं। चल, अभी आया। (मित्र की ओर देखकर) इन नौकरानियों

से आजिज आ गया। यह ऐसी ढीठ हैं कि क्या बताऊं कुछ कहना होता है तो सर पर चढ़ कर बोलती है।

सदानंद—अच्छा तो यह नौकरानी है? कुछ पूछिए न पंडित जी। नौकरानियां अजीब होती हैं। सभ्यता का नाम नहीं होता। आपकी श्रीमती जी ऐसी ढीठ नौकरानी को कैसे पसंद करती हैं।

पंचानन—(कुछ संभल कर) भई—हम लोग तो काफी एड्वांस हैं। देखिए न, अभी तक मेरी श्रीमती जी टहल कर ही नहीं लौटी हैं। पर्दा वर्दा के मै सख्त खिलाफ हूं। रही नौकरानी की बात, तो आप जानते ही हैं ससुराल का मामला है। जल्दी निकाल देने से जरा हंसी होगी। लेकिन मैं इसको सभ्यता सिखाऊंगा, जरूर सिखाऊंगा।

सदाननंद—अवश्य अवश्य, नहीं आज तो खैर मैं बैठा हूं, कल कोई भला आदमी आ जाय तो अपनी नाक कट जायगी।

पंचानन—(नाक पर हाथ फेर कर) हाँ, जरूर जरूर नाक कट जायगी। मैं इसे सभ्य बना कर ही रहूंगा।

सदानंद—क्यों न हो आप आदर्श स्थापित न करेंगे तो कौन करेगा। हाँ पंडित जी, गुस्ताखी माफ़ कीजिएगा। कृपया खिचड़ी न खाया कीजिए। बड़ी वाहियात चीज़ है।

पंचानन—(जरा मुस्कुराकर) नहीं भाई? तुम जानते हो मैं पक्का शाकाहारी हूँ। यों तो सवेरे टोस्ट और चाय मेरा नित्य का कलेवा है। आज श्रीमती जी के बाहर चले जाने से सब

गड़बड़ हो गया है। लेकिन व्याख्यान देने जाना है इससे सोचा कि कोई हल्की चीज खाकर चलना चाहिए जिससे पेट हल्का रहे।

सदानंद—(भावभंगी से) बात तो आपने लाजवाब सोची। गर्मी का मौसम है। चाय के गरम कर देने का अन्देशा भी है। फिर मौका भी गरमाहट का है इससे खिचड़ी ही उत्तम होगी। वाकई आप बड़े दूरन्देश हैं।

पंचानन—भाई, मैं अपना प्रोग्राम पहले से ही ठीक कर लेता हूँ। क्योंकि मुझे तो भुगतना होता है।

(देवकी दरवाजे से दूसरी ओर जाती है । पंचानन सदानंद को आँख बचा कर उसकी ओर घूरते और दाँत पीसते हैं।)

पंचानन—(मित्र की ओर देखकर) हां, तो अब थोड़ा ही समय रह गया है। देखूँ, नौकरानी परेशान कर रही है। फिर वहाँ तो भेंट होगी ही।

सदानंद—अच्छा मैं भी चलता हूँ। वहीं भेंट होगी।

पंचानन—(दरवाजे की ओर घूरता है फिर मित्र की ओर देखकर) हां-हां, वहाँ मुलाकात क्यों न होगी, मैं ठीक वक्त पर आ जाऊँगा। लेकिन सदानंद! तुम मेरे गुरु-भाई हो । मेरी इज्जत आबरू तुम्हारे हाथ में हैं । किसी तरह मेरी भद्द न हो।

सदानंद—वाह। यह आप क्या कहते हैं? मेरे रहते हुए आपकी भद्द। जबान काट लूंगा, जबान। आप मुझे समझते क्या हैं।

पंचानन—आपसे आशा ऐसी ही है।

(सदानंद का प्रस्थान। पंचानन का उठ कर घर के भीतर जाना)

दूसरा दृश्य

[स्थान पंचानन के घर का आँगन]

(देवकी आधा घूँघट मारे चूल्हे के पास बैठी है। पंचानन क्रोधित होकर उसके पास जाता है और बड़बड़ाता है।)

पंचानन—(घूंसा तानकर क्रोध में) क्यों री, देखकर नहीं चलती। जानती नहीं कौन बैठा है, कौन नहीं। आँख में पट्टी बाँधे रहती है।

देवकी—(काँपती हुई धीरे से) मुझे क्या मालूम कौन बैठा था।

पंचानन—शर्म को घोल कर पी गई है। कौन था! (दाँत पीसता है) ऐसी बेमर्दगी! ऐसी बेहयाई! जानती नहीं, बाहर मेरी इज्जत कैसी है। इज्जत लेना चाहती है। (धोती का छोर पकड़ कर) ऐसी गंदी धोती! बाप रे! इसने तो आज मेरी इज्जत ले ली थी।

देवकी क्या कहूँ, आप मुझे ही बार बार कहते हैं। कितनी बार कहा कि धोती धोबी को दे दीजिए, या साबुन ही मंगा दीजिए। किससे कहूँ, कोई सुनने वाला है।

पंचानन—(क्रोध में) धोबी, धोबी क्या पैसे नहीं लेता, मुफ्त धोता है ? तेरा कोई लगता है। चली है धोबी से कपड़ा धुलाने ! हुँ !

देवकी—पैसे पाने पर कौन धोबी है जो कपड़ा न धो देगा। मैं बाहर निकलती होती तो तुम्हारी ये बातें क्यों सुनने को मिलतीं।

पंचानन—(दोनों हाथ कमर पर रखकर) अच्छा ! अब धोबी के यहां जायगी। तुझे भी शहर की हवा लग रही है। तेरा क्या ठिकाना ? जब मैं घर पर न रहता होऊँगा तो कहीं जरूर जाती होगी। पैसा ! पैसा ! करके तूने मेरी जिन्दगी खराब कर दी है। पैसा क्या तेरे बाप का है। अब अगर पैसे का नाम लिया (गले की ओर हाथ बढ़ाता है) तो गला घोंट दूँगा।

देवकी—(सिसक कर रोती हुई) हे भगवान अब किसी तरह छुटकारा नहीं। क्या करूँ मेरी मौत भी नहीं आती। कलेजा थक गया है।

पंचानन—(जोर से) फांसी लगा ले, फांसी। बेवकूफ की बेटी ! तुझे कितना समझाऊँ, तेरे दिमाग में तो भूसा भरा है। अक्ल तो तेरे भंजे में है ही नहीं। अरे कपड़े रंग ले, जरा अक्ल से काम ले। खासे नीले रङ्ग से कपड़ा रंग लेने से धोबी का पिंड छूट जायगा। अब जमाना आ गया है जब किफायत से काम निकालना चाहिए। नहीं तो दाने दाने को मुहताज हो जाओगी।

देवकी—यह बात थीं तो अब तक क्यों नहीं बताया। बाजार से रंग ही ला देते।

पंचानन—अब तो सब कुछ मैं करूँगा ही। यह भी कोई बतलाने की बात थी लेकिन अक्ल के दुश्मन के लिए क्या चारा! इसकी इतनी हिम्मत! मेरे मित्र बैठे हैं और पैर में बेड़ी पहने चली आ रही है। बेशर्म कहीं की।

देवकी—बेड़ी! बेड़ी कैसी!

पञ्चानन—(पैर की ओर इशारा करके) अरे मोटा कड़ा और क्या?

देवकी—हाय! यही तो मेरा सुहाग है। तुम्हारे जीतेजी मैं कड़ा नहीं उतार सकती। मारो, काटो, गाली दो, बको-झको, जो चाहे सो कर, लेकिन कड़ा न उतारूँगी।

पञ्चानन—(कुछ द्रवित होकर) हां-हां, पति-भक्ता तो तुम ऐसी हो कि क्या कहना! तुम्हारी ही वजह से मैं ज़िन्दा हूँ। (समझा कर) देखो, आज फिर समझाये देता हूँ। यह दुनिया बड़ी विचित्र है। मैं एक समाज सुधारक हूँ। चारों तरफ देख कर चलता हूँ। लेकिन दुनिया कुयें में कूदे मैं तो अपने घर की मर्यादा नहीं तोड़ सकता। मेरे १५ पुश्त से धर्म का पालन होता आया है।

देवकी—(घूँघट सर पर चढ़ा कर) आखिर आपका मतलब क्या!

पञ्चानन—(बैठकर) यही कि आज कल की स्त्रियां न जाने किस ओर जा रही हैं। हाथ पाँव में कुछ नहीं; विवाहिता भी विधवा का वेश बनाये हुए शर्म, हया पर्दा का नाम नहीं रह गया है। मेरे पिताजी कहते थे कि बेटा, बूढ़ा हो गया लेकिन तुम्हारी माता जी का मुंह मैंने कभी नहीं देखा। (सर नीचा करके) हाय, मेरी सती साध्वी माता! तुम जीवित होती तो क्यों आज मुझे घर में मग़ज़पच्ची करनी होती। देखो, यदि मैंने आज बात न बना दी होती तो न जाने क्या हो जाता।

देवकी—(ज़रा कुछ व्यग्रता से) बात क्या बना दी।

पंचानन (मुस्कराकर) यही कि मैंने अपने मित्र से बहाना बना दिया कि यह मेरी नौकरानी है। बुन्देल खंड से आई है। तुम्हीं बताओ यदि ऐसा न होता तो आज टाउन हाल में मुँह दिखाने लायक रहता?

देवकी (क्रुद्ध होकर) तो क्या मैं तुम्हारी पत्नी नहीं हूँ? नौकरानी हूँ। मैं सब सह सकती हूँ, दूसरों के सामने अपमान नहीं सह सकती। मैं कल भैया को बुलाकर नैहर चली जाऊँगी।

पंचानन—अरे! बाप रे बाप! घोर कलियुग है। गुड़ खिलाना जहर हो रहा है। (विनम्रता से) देखो, इसमें अपमान क्या है। वे यह तो जानते नहीं कि तुम पत्नी हो। अपना मतलब निकल गया। हम तुम राजी तो क्या करे काजी। गलती तुम्हारी ही थी। न तुम सामने आती न मुझे ऐसा कहना पड़ता।

देवकी—नहीं, उन्होंने पहचान लिया होगा।

पंचानन—पहचान, पहचान तो उनके फिरिश्ते नहीं सकते। मैंने कच्चे घाट का पानी नहीं पिया। मेरा नाम है पंचानन शास्त्रालंकार! (व्याख्यान का स्मरण करके) अरे, अब तो वक्त होगया। मुझे अब जल्दी करनी चाहिए। देखो, मेरे जाने पर किवाड़े बन्द रखा करो। कोई लाख पुकारे किवाड़ मत खोलना। मैं जब आऊँ तब मुझे भी भीतर से किवाड़ की दरारों से पहचान कर किवाड़ खोलना।

देवकी—आखिर कहाँ जाना है।

पंचानन (उत्सुक होकर) अरे, तुम नहीं जानती हो। आज मेरा टाउन हाल में 'स्त्री सुधार' पर व्याख्यान है। वहाँ बड़े-बड़े घर की महिलाएँ आयेंगी, लोग आएँगे और कालेज के विद्यार्थी भी आवेंगे। आज काफी मजा आएगा। (उठकर चलता है)

देवकी—अरे खिचड़ी ठंडी होगई कुछ खा तो लो। पता नहीं वहाँ कितनी देर लगे।

पंचानन—मुझे देर हो रही है। तुम्हारी बकझक के मारे तो और नाक में दम रहता है। अच्छा लाओ कुछ खा ही लूँ। (कपड़ा उतार कर हाथ पैर धोकर नंगे बदन भोजन करने बैठता है।)

तीसरा दृश्य

[स्थान—टाउनहाल का मैदान]

(मैदान में पंचानन का व्याख्यान। तालियों की गड़गड़ा-

हट। व्याख्यान की समाप्ति! विद्यार्थियों द्वारा पंडितजी की दावत। मेज के चारों ओर विद्यार्थी, सदानंद और पंचानन बैठे हैं। मेज पर रसगुल्लों की तश्तरी, चाय का प्याला, छुरी कांटा रखा है। लोग चाय पी रहे हैं।)

विद्यार्थी—पंडितजी, चाय पीजिए, लाइए मैं बना दूँ।

पंचानन (रसगुल्ले की ओर देखकर) नहीं आज तो मेरा व्रत है। मैं आज नहीं पीऊँगा।

विद्यार्थी—तो मिठाई ही खाइए। बढ़िया रसगुल्ले आपके लिए खास तौर पर मगाये गए हैं।

पंचानन (सदानन्द की ओर देखकर फिर सोचकर) अच्छा (उँगली का इशारा करके) यह रसगुल्ले मेरे ही लिए मँगाए गए हैं। देखने में तो बड़े खूबसूरत हैं। लेकिन, भाई इसमें तो विदेशी चीनी पड़ी होगी? यों तो आप लोग जानते हैं मैं परहेज या छुआछूत नहीं मानता, लेकिन आज व्रत के दिन शुद्ध भोजन करना चाहिए।

विद्यार्थी—क्यों नहीं, अवश्य अवश्य। लेकिन पंडितजी यह शुद्ध देशी चीनी का बना है। फलाहारी भी है, आपको एतराज न होना चाहिए।

पंचानन—हाँ, तब तो ठीक है। मालूम होता है आप लोग ज्योतिषी भी हैं। नहीं भला रसगुल्लों की इस वक्त क्या जरूरत थी।

एक विद्यार्थी (दूसरे विद्यार्थी की ओर इशारा करके) पंडितजी, ये ज्योतिष शास्त्र के बड़े जानकार हैं।

पंचानन—(रसगुल्ले खाते हुए) मैं तो आप सभी को ज्योतिषी समझता हूँ।

दूसरा विद्यार्थी—यह सब आपकी कृपा है।

(पंचानन जी रसगुल्ले खाकर अपने दुपट्टे से हवा करते हैं। तीन चार अन्य विद्यार्थी वहाँ आते हैं)

पहला—पंडितजी, जयराम जी की।

दूसरा—पंडितजी, बन्दगी।

तीसरा—महाशय जी, नमो नमः।

चौथा (हँसकर) पंडितजी, जय सियाराम की।

(पंचानन आश्चर्य और विस्मय से सबकी ओर देखते हैं। फिर नीचे की ओर देखने लगते हैं।)

पहला—पंडित जी, हम लोगों ने आपको तकलीफ दी, क्षमा कीजिए, हम लोग आपसे कुछ पूछना चाहते हैं।

सदानन्द (उत्सुकता के साथ) हाँ-हाँ, आइए, बैठिए, पूछिए। पंचानन जी थक गए हैं लेकिन आपको जो पूछना हो पूछिए।

तीसरा विद्यार्थी (बैठे हुए लोगों को सम्बोधित करके) अरे साहब, पंडितजी ने तो आज कमाल कर दिया। स्त्री-सुधार पर ऐसी पुरज़ोश स्पीच मैंने जिन्दगी में नहीं सुनी। वाह, वाह क्या तर्क थे। कैसे कथानक थे। सारी बातें हम लोगों के रोम-रोम में समा गईं।

(लड़के बैठते हैं। पंडित जी बड़े गौर से उनकी ओर देखते हैं)

अन्य विद्यार्थी—हाँ, समा क्यों न जायँ। पंडितजी व्याख्यान ही ऐसा देते हैं कि कलेजे में तीर की तरह जाकर चुभ जाता है।

(दो-तीन लड़के वाह-वाह कहकर अपने वक्ष-स्थल पर हाथ फेरते हैं)

पंचानन (प्रसन्न होकर) आप लोग तो मुझे बनाने लगे।

दूसरा विद्यार्थी—पंडित जी, भला आपको कौन बना सकता है। हम सभी लोगों को परमात्मा ने बनाया है।

पंचानन—हाँ-हाँ, क्यों नहीं? परमात्मा तो हम सब को बनाता ही है।

तीसरा—अच्छा पंडितजी, पर्दे के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है?

पंचानन—पर्दा! अरे पर्दा! इस युग में हर्गिज न होना चाहिए। स्त्री-जाति के लिए यह कलंक है। आप लोगों ने तो पढ़ा होगा कि हमारे आदि पुरुष कुछ पहनते ही नहीं थे। बाद को पेड़ की छाल पहनने लगे थे। अपना वही पूर्व गौरव प्राप्त कीजिए। पर्दे का वायकाट कीजिए। अखबारों में लिखिए। यदि सत्याग्रह सम्भव हो तो उसका भी सहारा लिया जाय।

लड़के—(ताली पीटकर) क्या ठिकाने की बात कही है।

चौथा लड़का—पंडितजी, गुस्ताखी माफ़ हो तो एक बात कहूँ; बुरा न मानिएगा।

पंचानन—(मुस्कराकर) नहीं नहीं, बुरा मानने की क्या बात है। जो कुछ कहना हो कह डालो। कसर न रहे। इस वक्त सौ खून माफ़!

विद्यार्थी—पंडितजी, आपकी श्रीमतीजी व्याख्यान में नहीं पधारी। यदि वे व्याख्यान देती तो स्त्रियों पर अधिक प्रभाव पड़ता।

पंचानन—(गर्दन ऊँची करके) वाह, आप लोगों ने देखा ही नहीं, आईं तो थीं। अभी अभी गईं है। बड़ी सुन्दर व्याख्यान देती हैं। हः हः हः हः, वे तो पर्दे के सख्त खिलाफ़ हैं। बड़ी एडवांस हैं। आप लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि स्त्री सुधार का मैंने जो बीड़ा उठाया है वह उन्हीं की प्रेरणा से।

(वाह, वाह की आवाज होती है)

एक लड़का—(दूसरे लड़के के कान में चुपचाप कहता है तब तो खूबसूरत भी होगी) (प्रत्यक्ष) हां, पंडितजी, हम लोग एक दिन आपके घर आना चाहते हैं।

पंचानन—(आश्चर्य चकित होकर) घर, भाई घर में तो मुझे फुर्सत नहीं। मेरे मिलने का कोई ठिकाना नहीं।

चौथा लड़का—खैर कभी न कभी तो आपसे भेंट हो ही जायगी। लेकिन आपकी श्रीमती जी तो मिल ही जायँगी।

पंचानन—वे, वे तो और भी झंझटों में पड़ी रहती हैं। स्त्रियों की सभा में व्याख्यान देने के लिए उन्हें कलकत्ता और बम्बई तक जाना पड़ता है। फिर आप लोग तो पढ़े लिखे हैं। बिना जान पहचान के एडवांस से एडवांस स्त्री को पहले बोलने में संकोच होता ही है।

दूसरा विद्यार्थी—हां, यह तो आपका कहना ठीक है। लेकिन सार्वजनिक सेवा-कृतिवाली स्त्रियों के लिये संकोच की कोई बात नहीं। पंडितजी, बात दरअसल यह है कि हम लोग अपने कालेज के एक डिबेट में उन्हें सभानेत्री बनाना चाहते हैं।

पंचानन—अवश्य बनाइए। इसमें क्या हर्ज है। लेकिन आज कल जरा वे अलील हैं। स्वस्थ होते ही मैं आप लोगों को सूचित करूंगा।

चौथा लड़का—पंडितजी, तलाक़ के सम्बन्ध में आप क्या कहते हैं।

पंचानन—हां-हां, तलाक़ की प्रथा तो निहायत जरूरी है। अब तो मौका भी अच्छा है। सुधारकों के हाथ में शासन आया है। कानून बदलवाइए, आन्दोलन कीजिए। यदि पुरुष स्वतंत्र हैं तो स्त्रियों को स्वतंता मिलना जरूरी है।

एक लड़का—धर्मशास्त्र तो आज्ञा नहीं देते।

पंचानन—धर्मशास्त्र पुराने पड़ गए हैं। नए धर्मशास्त्र बन-

वाइए। आज कल पंडित एक से एक बढ़कर हैं। कानून बदल जायगा तो धर्मशास्त्र को कौन पूछता है। यथा राजा तथा प्रजा।

रुद्रानन--पंचानन जी ठीक कहते हैं। नवयुवकों के हाथ में ही समाज का कल्याण है।

(लड़के एक दूसरे की ओर देखकर प्रसन्न होते हैं। मुस्कराते और पंचानन की प्रशंसा करते हैं और उन्हें नमस्कार कर वहां से प्रस्थान करते हैं।)

चौथा दृश्य

[स्थान—पंचाननजी के घर का दरवाजा]

(देवकी दरवाजे के बाहर रंग वाले से रंग खरीद रही है। दो तीन पड़ोस की स्त्रियां भी खड़ी हैं।

देवकी—(भयभीत होकर) एक पैसा का मुझे नीला रंग दे दो।

रंग वाला—(रंगों के डिब्बे खोलकर रंग दिखाता हुआ) लीजिए। बहूजी, तरह-तरह के बढिया रंग हैं। गुलाबी, बैंजनी, अनारी, पीला, हरा,—उम्दा रंग लीजिए।

देवकी—नहीं मुझे एक पैसा का नीला रंग चाहिए।

दूसरी स्त्री—हाँ बहूंजी कुछ अच्छे रंग चार छः पैसे के ले लीजिए, एक पैसे के रंग से क्या होगा।

देवकी—नहीं नहीं, मुझे सिर्फ एक पैसा का नीला रंग चाहिए। जल्दी दो पता नहीं वे किस वक्त आ जांय।

रंगवाला—बहूजी अच्छा गुलाबी रङ्ग भी ले लीजिए।

देवकी—मुझे जल्दी दो नहीं तो मैं जाती हूँ, लो पैसा!

स्त्रियाँ—ले लो बहूजी, अभी पंडितजी के आने का वक्त नहीं हुआ।

देवकी—मैं जाती हूं। (जाना चाहती है)

रङ्गवाला—अच्छा लीजिए एक पैसे का गुलाबी और एक पैसे का नीला।

देवकी—अच्छा लाओ।

(इतने में पंडितजी आ जाते हैं। देवकी को घर के बाहर रङ्गवाले को पैसे देते हुए देख लेते हैं। स्त्रियां भाग जाती हैं। देवकी भीतर भागती है और किवाड़ बन्द कर लेती है)

पंचानन—(क्रोध से) क्यों बे रङ्गवाले, मेरे दरवाजे पर क्यों आया! औरतों को बहकाने आता है। ठहर, आज मैं तुझे मजा चखाता हूँ।

रङ्गवाला—नहीं बाबूजी, लो मैं जाता हूं।

पंचानन—जाता कहाँ है। आज बैठ, देखूगां तू कितनी देर मेरे दरवाजे पर बैठता है। तुझे पुलिस में दूंगा। मुझे तूने समझ क्या रखा है। और उसे—उसे तो........।

(पंडित जी क्रोध में दरवाजे की ओर बढ़ कर कुंडी खट-खटाते हैं। रङ्गवाला पोटली लेकर खिसक देता है।)

पंचानन—खोल किवाड़ा, जल्दी खोल अभी तुझे बताता हूं।

(देवकी चुपचाप किवाड़ा खोल देती है।)

पंचानन—(क्रोध से दांत पीसकर) क्यों बाहर निकली? बोल जल्दी। (देवकी का हाथ झटक कर) मैंने कहा था न कि मेरे न रहने पर किवाड़ न खोलना। क्यों खोला? बोल।

देवकी—(सिसकती हुई) नीला रङ्ग लिया है, धोती रङ्गना था।

पंचानन—एक दिन में तेरी धोती कहाँ फटी जा रही थी। दिखा कहाँ रङ्ग है। देवकी नीला रङ्ग दिखाती है। गुलाबी पुड़िया भी पास पड़ी है। पंचानन उसे भी उठा कर देखते हैं।)

पंचानन—और इस रङ्ग को क्यों खरीदा? गुलाबी रङ्ग कीक्या जरूरत थी? गुलाबी में कपड़े रङ्ग कर किसे दिखावेगी? ठहर जा, कल से तुझे बताऊँगा। ताला बन्द करके जाऊगा, ताला। अब रङ्गरेज और रङ्गवाले से दिल्लगी मजाक की सूझी है।

(देवकी जोर से रोने लगती है। पड़ोस की स्त्रियां आकर मकान के दरवाजे के बाहर खड़ी हो जाती हैं।)

पंचानन—"स्त्री चरित्रम पुरुषस्य भाग्यम्, दैवो न जानति कुतो मनुष्यः" यह शास्त्र वाक्य झूठ नहीं हो सकता।

(देवकी फूट फूट कर रोती है बाहर खड़ी स्त्रियां आपस में कहती हैं। बड़ा कसाई है। पंचानन पीछे मुड़ कर स्त्रियों की बात सुन लेते हैं और उनकी ओर दौड़ते हैं।)

पंचानन—(क्रोध में) मेरे दरवाजे पर क्यों तुम लोग खड़ी हो, चली जाओ । अपना मुँह काला करो । यहां गाना, नाच, तमाशा या नाटक नहीं होरहा है । तुम्हीं लोगों ने तो मेरी औरत को बिगाड़ दिया है । मेरे मामले में तुम लोग बोलने वाली कौन होती हो । मैंतो कसाई हूं । जाओ, जाओ, मेरे यहां से । (औरतो की ओर जोर से दौड़ता है)

(स्त्रियाँ बड़बड़ाती पंचानन को बुरा भला कहती और देवकी से सहानुभूति दिखाती हुई चली जाती हैं ।)

पंचानन— भीतर जाकर जलते हुए चूल्हे को देखकर एक लोटा पानी लेकर बुझाता है ।) आज न खाऊंगा न तुझे खाने दूंगा । तूने मेरी इज्जत लेली । रंग खरीदने चली है, जाती क्यों नहीं बाज़ार से सौदा लाने ।

(देवकी रात्रि में जमीन में पड़कर सो जातो है । पंचानन प्रातःकाल उठकर दरवाजे में ताला लगा कर चला जाता है । पड़ोस की स्त्रियां चुपके से आती हैं ।

एक स्त्री—(दरवाजे के बाहर किवाड़ की सांस से देख कर) वहू जा उठो खाना खाओ, क्या करोगी ? ऐसा कसाई तो मैंने देखा ही नहीं ।

देवकी—(उठकर किवाड़ के पास आती है) क्या कहूं बहिन, समझ मे नहीं आता । नाक में दम हो गया है ।

दूसरी स्त्री—कहां गए हैं बहूजी, (ताले को देखकर) आज तो ताला लगाकर गए हैं।

देवकी—कहीं स्त्री सुधार पर लेक्चर देने गए होंगे।

पहली स्त्री—बहूजो दुनियाँ ही उल्टी है। मसल है कि दूसरे को सगुन बतावे खुद कुत्तों से कटवावे।

दूसरी—हां बहूजी, क्या करोगी, आज कल घर-बाहर का ऐसी ही समस्या है।

(स्त्रियों का प्रस्थान)

———

राबर्ट नैथनियल ओझा

प्रथम दृश्य

[स्थान—जॉर्ज बोर्डिङ्ग का एक कमरा]

(बलिया-निवासी श्री रामानन्द ओझा विश्वविद्यालय में एम० ए० प्रीवियस के विद्यार्थी हैं। मेज पर सर झुकाए पुस्तक पढ़ रहे हैं, किन्तु कुछ चिन्तित जान पड़ते हैं। एकाएक कुछ विद्यार्थी कमरे में प्रवेश करते हैं।

सब विद्यार्थी—हल्लो रामानन्द (हाथ मिलाने के लिए बढ़ते हुए) तुम भी क्या अजब जीव हो! (हाथ मिलाकर हँसते हुए) अम्याँ यार, क्या तुम भी चौबीस घण्टे किताब के कीड़े बने रहते हो? नवम्बर-दिसम्बर में भी कहीं पढ़ा जाता है?

रामानन्द—(कुछ को चारपाई, कुछ को कुर्सी पर बैठने का इशारा करके) आओ भाई, बैठो ! तुम लोगों से तो पीछा छूटना मुश्किल है, (मेज़ पर से चश्मा उठाकर आँख में लगाते हुए) यूनीवर्सिटी में देखो तो; बोर्डिङ्ग में देखो तो, रास्ते में देखो तो, लाइब्रेरी में देखो तो, जहाँ देखो, तुम लोगों के मारे परेशान रहता हूँ।

राजेन्द्र—(हँसता हुआ) मित्र ! क्या मेरे दिल की बात कही है। 'जहाँ देखता हूँ, वहाँ तू-ही-तू है।' क्या ग़ज़ब की फ़िलॉसफ़ है। (सब लड़के ताली पीटकर 'हियर'-'हियर' करते हैं) क्यों न हो ! आख़िर हो भी तुम ऐसी जगह के, जहाँ अरहर के पेड़ पर सीढ़ी लगाकर फली तोड़ी जाती है।

(सब हँसते हैं)

रामानन्द—(व्यग्र होकर) देखो भई, व्यर्थ की बकवाद मत करो। मैं वहीं का हूँ, इसमें तुम्हारा क्या इजारा ! बकवाद करना हो तो यहाँ से चले जाओ (चश्मा उतार कर मेज़ पर रखता है) बलिया, बलिया, नाक में दम कर दिया !

मोहन—(रामानन्द का हाथ पकड़ कर अपनी बग़ल में बैठाताहुआ) अरे यार, नाराज़ न हो। यह तो हुआ ही करता है। हम लोग एक बहुत ही ज़रूरी काम के लिये तुम्हारे पास आये हैं। जानते भी हो, या यों हीं बकबक करने लगे ! (पीठ पर हाथ फेर कर) यार, ज़रा सलीक़े की बात किया करो।

रामानन्द—(झुँझलाकर) नहीं भई, यह भी कोई बात है। सब को बेवक़ूफ़ समझ रखा है। बलिया, बलिया !…हुँ !

मोहन—(सब लड़कों से 'क्या वाहियात बातें करते हो, कहकर) अच्छा, हटाओ, यह तो हुआ ही करता है। (रामानन्द की पीठ पर हाथ फेरता है।)

राजेन्द्र—अच्छा भई, पहले एक गाना होजाय, तब काम भी शुरू हो; क्योंकि तबियत कुछ अलील-सी होरही है। (सब लड़के 'अवश्य'-'अवश्य' कहते हैं।)

रामानन्द—तो यहाँ कौन तानसेन बैठा है, जो अपने गाने से तबियत हरी कर देगा ?

भगवती—वाह ! फिर तुम बहकी-बहकी बातें करने लगे ! तुम क्या ख़ाक समझते हो गायन ! म्यूजिक कॉन्फ्रेन्स के गाने में मुझे मेडिल मिल चुका है। तुम मेरा अपमान कर रहे हो।

रामानन्द—अच्छा ! मेडिल ! किस बेवक़ूफ़ ने तुम्हें मेडिल दे दिया ?

राजेन्द्र—रामानन्द, तुम चुप भी रहो, बेकार क्यों बात बढ़ाते हो ? (भगवती की ओर देखकर) हाँ भगवती, जल्दी करो ! हो जाय कुछ। देर हो रही है। (लड़कों की ओर इशारा करके) भई ख़ामोश !

(लड़के चुप हो जाते हैं। सब के मुख पर मुस्कराहट दिखाई देती है। भगवती हाथ मटकाकर गाता है)

काहे मारे नैना बान साँवरे !
सैंयाँ बाँधे छुरी-कटारी,
नैना बाँधे तलवार। साँवरे०—
सैंया बाँधे छोटी-सी पगिया,
नैना बाँधे गुलनार ॥ साँवरे०—

(लड़के 'वाह ! वाह !' करते हैं। भगवती खड़ा होकर गाना गाता और नाचता है।

रामानन्द—(सब लड़कों की ओर देखकर) भई वाह ! यह हुनर तुम्हें कहाँ मिल गया ? (बड़े ज़ोर से हँसता है)

(गाना बन्द होते ही तालियों की गड़गड़ाहट)

सोहनलाल—अब काम की बातें करो। काफ़ी वक्त हो चुका है, (रामानन्द की ओर इशारा करके) भई, तुमने तो सुना ही है, यूनियन की प्रेसीडेण्टशिप के लिये ज़ोरों से कनवेसिंग हो रही है।

राजेन्द्र—(गम्भीर होकर) वाह, अगले सोमवार को वोटिंग होगी ! तुम अभी कनवेसिंग के ही चक्कर में पड़े हो !

सोहनलाल—हाँ, हाँ, काफ़ी कनवेसिंग हो चुकी है। मैं मौक़े से चूकनेवाला नहीं। इस वक्त रामानन्द का नाम हरएक लड़के की ज़बान पर है।

भगवती—भई, हम लोग तो सो गये थे, लेकिन यह काम तुमने ख़ूब किया। मिस्टर ओझा प्रेसीडेण्ट हो जाँय, तो हम

लोगों की चाँदी है। एक बड़ी पार्टी दी जायगी।

रामानन्द—(भीतर से प्रसन्न और ऊपर से गम्भीर होकर) तो क्या तुम लोगों को मुझे ही बेवकूफ बनाना था ? सब लोग मेरी हँसी उड़ावेंगे।

भगवती—हँसी उड़ानेवाले की ऐसी-तैसी ! देख लूँगा—समझ लूँगा—रास्ता चलना बन्द करा दूँगा। ओझा, तुम क्या समझते हो ? सोहनलाल से पूछो—हमारे होस्टल के लड़कों को तुम जानते ही हो। सभी अवधूत हैं। जी-जान से तुम्हारे लिये तैयार हैं। फिर क्रिश्चियन-होस्टल तो बद-नाम है।

सोहनलाल—हाँ, रामानन्द, चुप रहो, मैं सब ठीक करा दूँगा। तुम कल मेरे होस्टल में आओ। मैं वहाँ सब से तय करा दूँगा।

राजेन्द्र—हाँ ओझा, कल तुम जरूर चले जाओ। हम भी अपने होस्टल में तुम्हारी पूरी कनवेसिंग कर चुके हैं। कल हम लोग भी सोहनलाल के यहाँ आ जायेंगे।

रामानन्द—मित्रो ! तुम लोगों के मारे आफ़त है। मुझे अभी एतबार नहीं है। कहीं मजाक न कर रहे हो !

भगवती—(हँसकर) अरे मित्र, कैसी बात करते हो। हँसी हँसी के वक्त होती है, लेकिन अब तो मरने-जीने का सवाल है। फिर मेरा होस्टल तो तुम्हारे पक्ष में बदनाम हो चुका है।

रामानन्द—लेकिन तुम्हारे होस्टल में मैं लोगों को कम जानता हूँ। जानते हो, मैं तो किसी के यहाँ जाता नहीं। लेकिन सुना है, तुम्हारे होस्टल में हौलू दिमाग़वाले काफ़ी हैं।

सोहनलाल—हुँ, इससे तुम्हें क्या? जिम्मेदार तो हम लोग हैं। उस्ताद, जीत जाओगे जीत! प्रेसीडेण्ट का ओहदा मामूली नहीं होता। हमारे होस्टल में कैप्टन सिंह एक ऐसा आदमी है जिस पर लड़के फ़िदा रहते हैं। उससे मैंने वायदा करा लिया है।

रामानन्द—कैप्टन सिंह! यह कौन है?

भगवती—अरे, इसी साल आया है, क्रिश्चियन है। लॉ फ़ाइनल का विद्यार्थी है। बड़ा तगड़ा पड़ता है उस्ताद! देखोगे तो कहोगे। उसकी बात में जादू का असर है। क्रिश्चियन-वोट तो उसके हाथ में पूरी तरह हैं।

राजेन्द्र—हाँ, कहते तो ठीक हो, है बड़ा प्रभावशाली और हास्य-प्रिय है। इसी से तो उसे लड़के मानते हैं।

सोहनलाल—अच्छा, तो फिर कल की रही।

(सब उठकर कमरे में इधर-उधर टहलते हैं। दो-एक लड़के दीवाल पर टँगी हुई चीज़े देखते हैं)

रामानन्द—(लड़कों की ओर देखकर) अच्छा, तो मैं आऊँगा तुम लोग कहते हो तो……।

भगवती—हम लोग कहते हैं, डट जाओ। कल ज़रूर आओ।

सोहनलाल—ओफ़्फ़ा, ऐसा करो कि कल है इतवार! छुट्टी है ही। सवेरे क़रीब ९ बजे आओ और दिन-भर गप-शप रहे।

कल का पूरा प्रोग्राम होजाना चाहिये।

रामानन्द—अच्छा बात है। (दोनों हाथ जोड़कर सब को नमस्कार करता है।)

भगवती—देखो ओझा, भूलना नहीं। हम लोग तुम्हारे इन्तज़ार में रहेंगे; क्योंकि मैं जानता हूँ, वायदे के तुम बड़े पक्के हो।

राजेन्द्र—हाँ भाई, ज़रूर आना, नहीं तो हम लोग भी व्यर्थ में अपने होस्टल से आवें। वक्त. ख़राब होगा।'

रामानन्द नहीं भाई, ज़रूर आऊँगा।

(लड़के कमरे से निकलते हैं। कमरे से निकलते हुए भगवती 'काहे मारे नैना बान' गीत गाता और नाट्य करता हुआ रामानन्द की ओर देखकर मुसकराता है।)

दूसरा दृश्य

[स्थान—क्रिश्चियन होस्टल]

(भगवती का कमरा। एक ओर मेज़, बग़ल में कुर्सी। दूसरी ओर बिस्तर से युक्त बिछी चारपाई। भगवती कुर्सी पर बैठा हुआ, मेज़ पर रक्खे हुए बड़े शीशे में अपना मुँह देखकर बाल बनाने के लिये दाढ़ी में साबुन लगाता हुआ गाता है।)

गान

गुजरिया रस-भरे तोरे नैन।
दिन नहीं चैन रात नहिं निंदिया,
सालत रहि-रहि जगमग बिंदिया।

लहरी लहर अटपटी उन्मद,
वेधत हिय मधु बैन। गुजरिया०

(रामानन्द का प्रवेश। भगवती शीशे में रामानन्द की छाया देखकर।)

भगवती—रामानन्द की ओर मुँह करके आश्चर्य से) वाह मित्र, आख़िर तुम आ गये! (खड़ा होकर इशारा करके) बैठो, बैठो। वाह, तुम खूब आये! हम अभी-अभी सोच ही रहे थे। अच्छा, बैठो, मैं जरा दाढ़ी साफ़ कर लूँ।

(रामानन्द चारपाई पर पैताने की ओर पैर लटकाकर बैठता है। भगवती कुर्सी पर बैठकर दाढ़ी में साबुन लगाता है। शीशे में रामानन्द की छाया देखकर।)

भगवती—(रामानन्द की ओर मुँह करके) ऐं! यह क्या, अरे चारपाई पर अच्छी तरह पैर उठाकर बैठो। अब तो आये हो, रहोगे, (उठकर तकिया देता है) यह लो, पीछे लगा लो। (फिर कुर्सी पर बैठकर बाल बनाने के लिये उस्तरा उठाता है।)

रामानन्द—अरे भाई, सोहनलाल कहाँ है?

भगवती—लो, अभी बुलाता हूँ। (उठकर नौकर को जोर से आवाज लगाता है) बनारसी, ओ बनारसी!

(बनारसी का प्रवेश)

बनारसी—हुजूर?

भगवती—(हाथ का इशारा करके) सोहनलाल बाबू के पास

जाओ। बोलो, वे आ गये—समझे कि नहीं ? कहना वे आ गये। जल्दी जाओ, जल्दी ;

बनारसी—हुजूर, नाम पूछेंगे तो ?

भगवती—(चेहरा बनाकर) जाओ, जल्दी जाओ बस यही कहना कि जल्दी चलो, वे आ गये। मेरा नाम बता देना। (बनारसी जाता है। रामानन्द की ओर मुड़कर) गुरू, अभी वे मुफ्त में आकर परेशान करेंगे । दाढ़ी मेरी रह जायगी। मैं जरा एक मिनट में साफ़ कर लूँ। (कुर्सी पर बैठकर दाढ़ी बनाता हुआ, 'गुजरिया रस-भरे तोरे नैन' गीत गुनगुनाता है।)

(सोहनलाल अपने कमरे में बैठा है। बनारसी का प्रवेश)

बनारसी—हुजूर, भगवती बाबू आपको बुला रहे हैं।

सोहन—क्या कहा है ?

बनारसी—हुजूर, कहा है, जल्दी बुला लाओ। कहना, वे आये हैं।

सोहन—(नाराज होकर) वे आये हैं, कौन वे ? तुम्हारे आँखें हैं कि नहीं ? कौन आया है ? उनकी कैसी शक्ल है ?

बनारसी—(भयभीत होकर) हुजूर, हुजूर, हाँ·····

(सोहनलाल बात काटकर)

सोहन— अबे, हुजूर-हुजूर क्या करता है। औरत है कि मर्द ? जिन्न है कि हैवान ? कैसे हैं, कौन हैं, जल्दी क्यों नहीं बतलाता ?

बनारसी—(गिड़गिड़ाकर) हुजूर, उन्होंने यही कहा है कि जाकर कहना, 'वे आ गये' और मैं कुछ नहीं जानता।

(सोहन घड़ी की ओर देखकर, कुछ सोचकर प्रसन्न होता है)

सोहन (खड़ा होकर) अच्छा, तुम जाओ।

(सोहनलाल सूट पहनकर सीटी बजाता हुआ, अपने कमरे से चलकर अपने पड़ोसी 'राधेश्याम' और कैप्टन केसरसिंह को बुलाता हुआ, भगवती के कमरे की ओर बढ़ता है।)

सोहनलाल (कमरे में पहुँच कर) हल्लो, रामानन्द ! भाई हो तुम वक्त के बड़े पाबन्द ! (खाट पर बैठकर भगवती की ओर देखकर) अम्याँ, दाढ़ी तो तुमने ख़ूब साफ़ कर ली है।

भगवती (मुसकरा कर) हाँ भाई, वक्त ही ऐसा आ पड़ा है। आज बटेरबाज़ी करनी है।

सोहनलाल (रामानन्द के कपड़ों की ओर देखकर) अरे, यह तुमने क्या किया ? धोती-कुर्ता पहनकर इस बोर्डिङ्ग में आए हो ? इसका प्रभाव तो यहाँ अच्छा न पड़ेगा। तुम्हें सूट में आना चाहिए था। (मुँह बनाता है)

रामानन्द—मुझे क्या मालूम कि यहाँ सूट ही चलता है।

सोहन—देखो न, कल मैं तुम्हारे यहाँ धोती और कुर्ते में गया था ! लेकिन इस वक्त सूट पहनकर आया हूँ। भाई, तुम हो ठीक वहीं के रहनेवाले। (भगवती की ओर देखकर) तभी तो भगवती तुम्हें चिढ़ाया ही करता है।

भगवती (आश्चर्य से) अरे, राम ! राम ! धोती-कुर्ते में तो लुटिया डूब जायगी । (एक कोने में रक्खे हुए ट्रंक से सूट निकालकर) लो—जल्दी पहन लो, नहीं तो कैप्टन सिंह अभी आते ही होंगे । सारी कनवेसिंग खत्म हो जायगी । जल्दी पहनो, लो । (रामानन्द को सूट पहनाया जाता है)

सोहनलाल—भाई ओझा, अब तो तुम वाक़ई मिस्टर ओझा हो गये । (टाई सँभालता हुआ) ओहो, हो तुम पूरे गँवार ! मालूम होता है, नये मुसलमान हुए हो ।

भगवती (मुसकुराकर) हाँ, भाई ओझा, अब तो खूब जँच रहे हो । अच्छा, ज़रा सँभल कर बैठ तो जाओ । देखो, यदि कैप्टन सिंह आवें, तो बड़ी गम्भीरता से बात करना । वे जो कुछ भी कहें, उससे इनकार न करना । समझे !

रामानन्द—वाह, वे जो कुछ कहेंगे, करूँगा और किसी बात से इनकार न करूँगा ? अच्छी शिक्षा दे रहे हो !

भगवती (रामानन्द के कन्धे पर हाथ रखकर) रामानन्द, ज़रा-सा काया-कष्ट है । लेकिन जान जोखम नहीं है । अपने मतलब के लिये मौक़ा पड़ने पर गधे को भी बाप कह देना चाहिए । थोड़ी राजनीति सीखो । नहीं तो कहीं के न रहोगे । पढ़ना-लिखना खटाई में पड़ जायगा ।

('खट-खट' की आवाज़ का होना । केसरसिंह और राधेश्याम का प्रवेश । सब खड़े हो जाते हैं ।)

भगवती (दोनों से बारी-बारी से हाथ मिलाकर) हल्लो, कैप्टन सिंह, आप आ गए ! (रामनाथ की ओर मुड़कर) यह हम लोगों के भावी प्रेसीडेण्ट मिस्टर रामानन्द ओझा हैं ।

केसरसिंह (जबान मरोड़कर) हम आप को देखकर बड़े खुश हैं । आप जरूर प्रेसीडेण्ट होंगे ।

राधेश्याम (हकलाकर) अ-अ-अ-अ आप हो-हो-हो-ही रामानन्द ओ-ओ-ओ-ओ ओझा हैं ? ब-ब-ब-ब बहुत खूब !

केसरसिंह (भगवती की ओर देखकर) वक्त बहुत हो गया है । हम लोगों ने मिस्टर ओझा के व्याख्यान के रिहर्सल के लिये आज तय किया है । इसलिये आज स्पीच होनी चाहिए ।

भगवती—स्पीच !

केसरसिंह—हाँ, स्पीच ! स्पीच आखिर प्रेसीडेण्ट साहब बोल भी सकते हैं या नहीं, यह बात कैसे मालूम हो ? कहीं ऐसा न हो, हम लोगों की बदनामी हो जाय ।

भगवती (मुसकरा कर) हाँ, कहते तो ठीक हो भाई, मगर कहाँ स्पीच होगी ?

केसरसिंह (सब की ओर देखकर) अरे, होस्टल का इतना बड़ा हॉल खाली है । कुर्सी और मेज का इन्तजाम है, और क्या चाहिये ?

रामानन्द (चकित होकर) स्पीच !

राधेश्याम—ब-ब-ब-ब बहुत अ-अ-अ-अ अच्छी बात है ।

सोहन (रामानन्द से) यार, कैप्टिनसिंह ने ठीक सोचा है। क्या हर्ज है। तनिक काया-कष्ट है।

(दो विद्यार्थियों का प्रवेश)

सोहन—अच्छा, बड़े मौक़े से आये। हम लोग तैयारीमें हैं।

(दोनों बैठते हैं)

केसरसिंह—बस, अब जल्दी करो। अभी बहुत काम बाक़ी है।

भगवती (चिल्ला कर) बनारसी! ओ बनारसी!

(बनारसी का प्रवेश)

बनारसी—हुज़ूर!

भगवती—जाकर होस्टल में सब से कह आओ कि मिस्टर ओझा की पुरजोश तक़रीर होने जा रही है। हॉल में सब लोग आवें।

(बनारसी जाता है)

सोहन—भाई रामानन्द, ज़रा ठिकाने से बोलना! भद्द न हो जाय! यहीं आख़िरी फ़ैसला है। समझ गये?

रामानन्द (सर हिलाकर) अच्छी बात है, जैसी राय हो।

भगवती—राम! राम! फाँसी के तख्ते पर चढ़ने के लिये तुम से नहीं कहा जा रहा है, समझे! तुम्हारा ही भला होगा। हम लोग तो फोकट में रह जायेंगे।

(सब लड़के उठते हैं और होस्टल-हॉल में जाते हैं।)

तीसरा दृश्य

[स्थान—होस्टल-हॉल]

(डायस पर सोहन-भगवती बैठे हैं। मेज़ से कुर्सी लगी है। कुर्सी पर ओझा जी बैठे हैं। केसरसिंह और राधेश्याम ओझा जी के दोनों ओर खड़े होकर मोर्छल हाँकते हैं। सामने होस्टल के विद्यार्थी बैठे हैं)।

सोहन (खड़ा होकर विद्यार्थियों से) मित्रो, आज श्री रामानन्द ओझा अपनी स्पीच देंगे। आप यूनियन के चुनाव में प्रेसीडेण्ट होने के लिए खड़े हुए हैं। ('हियर-हियर' की आवाज़) अब हमारे मित्र भगवती बाबू स्वागत गीत गावेंगे। (ज़रूर, ज़रूर की आवाज़)।

भगवती (खड़ा होकर) मित्रो ! मैं अब आप लोगों की ओर से ओझा जी के स्वागत में गाना गाता हूँ। ज़रा ध्यान से सुनिये और दाद दीजिये। (मुसकराता और रूमाल से मुख पोंछता है)।

गान

पधारो ओझा जी महाराज !
भाग खुल गया हम लोगों का,
इस होस्टल का आज।
बड़े बोलय्या हैं यह भाई,
महफ़िल में है रौनक़ आई।

बाँधेंगे यह अपने सर पर,
प्रेसीडेण्टी ताज । पधारो०

(धन्य-धन्य और तालियों की आवाज़)

एक लड़का (खड़ा होकर) स्पीच हिन्दुस्तानी में होनी चाहिये ।

रामानन्द (कुर्सी से झुककर सोहन के कान में) हिंदुस्तानी क्या चीज़ है ?

सोहन (कान में) अम्याँ बोलो भी, होगी हिन्दुस्तानी-पिन्दुस्तानी । लड़के हैं, बकने दो ।

रामानन्द (खड़ा होकर) प्रिय सज्जनो ! मैं आप महानुभावों का हृदय से कृतज्ञ हूँ । मैं सम्माननीय आत्मीय बन्धुओं के आग्रह से सभापतित्व के लिये उद्यत हुआ हूँ ।

सब लड़के (ज़ोर से चिल्लाते हैं) आपका कहना समझ में नहीं आता । हिन्दुस्तानी ज़बान में बोलिये । यह क्रिश्चियन होस्टल है ।

सोहन (खड़ा होकर) भाइयो, ज़रा ठहरिये । ओझाजी बड़े भारी संस्कृत के विद्वान हैं । ('हियर-हियर' का आवाज़) अब आप हिन्दुस्तानी में बोलेंगे । (रामानन्द के कान. में कुछ अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग करने के लिये कहता है) ।

रामानन्द (सोच-विचारकर) लेडीज़ एण्ड जैण्टिलमैन !

सब लड़के—यहाँ कोई लेडी या मिस नहीं हैं, सब लेडा हैं ।

सोहन (खड़ा होकर क्रोध में) ऑर्डर प्लीज़ !

रामानन्द—मैं अपने मित्रों के कहने से प्रेसीडेण्डशिप के लिये स्टैण्ड हुआ हूँ।

लड़के (आवाज़ लगाकर) यह खिचड़ी ज़बान किस काम की ? अँग्रेजी में बोलिये या हिन्दुस्तानी में।

भगवती—अय्यँ, क्यों गड़गड़ कर रहे हो। दस-पाँच मिनट में क्या हुआ जाता है। जो कुछ भी ओझाजी कह रहे हैं, उसे सुनिये, ज़रा ध्यान से। हिन्दुस्तानी को लेकर क्या चाटोगे ? अँग्रेजी की कोर्स-बुक क्या अँग्रेज़ी पढ़ने, सुनने या समझने के लिये कम है ? अँग्रेजी ! हिन्दुस्तानी ! हुँ। (बैठ जाता है। राधेश्याम और केसरसिंह ज़ोर से मोर्छल हाँकने लगते हैं)।

रामानन्द—(क्रोध से) अब मैं हर्गिज़ लेक्चर न दूँगा। आप लोगों ने हमें बेवकूफ़ समझ रक्खा है। ('नहीं-नहीं' की आवाज़) अब मैं बैठता हूँ। जिसका जो चाहे बोले।

सोहन—(लड़कों से) मित्रो, आप लोग यह तो समझ ही गये होंगे, कि ओझाजी अच्छे वक्ता हैं। इस वक्त गर्मी ज्यादा है। तबियत भी ज़रा ठोक नहीं है। इसलिये यह मीटिङ्ग समाप्त की जाती है।

(सब लोगों का केसरसिंह के कमरे में प्रवेश, चारपाई और कुर्सियों पर बैठते हैं।)

रामानन्द—(क्रोध से) अब मैं जाता हूँ, मैं नहीं जानता कि इस होस्टल के लड़के इतने शरारती हैं। (उठता है)

भगवती—(हाथ पकड़ कर) ओझा, क्या तुम भी लड़कपन करते हो? बैठो, यह तो हुआ ही करता है। कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं की सभा में हुल्लड़ मच जाता है। देखो तो आजकल असेम्बलियों में हुल्लड़ मच रहा है। अख़बार पढ़ते हो या नहीं?

केसरसिंह—हाँ, हाँ, और क्या, गर्मी बहुत पड़ रही है। ज़रा दिमाग़ ठीक कर लीजिये। हम लोग तो सब आपके दिली दोस्त हैं।

राधेश्याम—(हकलाकर) क-क-क-क क्यों नहीं। दि-दि-दि-दि दिली दोस्त, नि-नि-नि-नि निहायत दिली दो-दो-दो-दो दोस्त।

सोहन—क्या ग़ज़ब करते हो? सारे किये-कराये काम पर पानी फेर देना चाहते हो। जिस डाली पर बैठे हो, उसी को काट रहे हो।

भगवती—(हँसकर) वाह मित्र! ख़ूब बोले। दूर की बात कह डाली। पं० राधेश्याम कथावाचक ने भी अपनी रामायण में ऐसी ही बात लिखी है—

जिस डाली पर वह जाता था,
वह डाली फिर डाली न रही।

केसरसिंह—अ हः हः हः! क्या मौक़े का किनारा कसा है। भाई, वाह भगवती! हो तुम पूरे रामानन्द के प्रेमी!

सोहन—क्यों? मिस्टर ओझाजी का नाम बदल देना दो-चार दिन के लिये ठीक होगा या नहीं?

केसर—वाह, यह तो बड़ी दूर की कौड़ी फेंकी है। नाम बदल जाने से क्रिश्चियनों के काफ़ी वोट टूट जाएँगे। अरे, राज-नीति की शतरञ्जी चाल के बिना आजकल काम नहीं चलता। सोचा तुमने ख़ूब!

रामानन्द—(घबराकर) नाम! क्या मेरा नाम बदल दिया जायगा? अब मैं समझा, तुम लोग हमें ईसाई बनाना चाहते हो।

केसर—मिस्टर ओझा, यही एक तरकीब है। नाम बदल देने में क्या हर्ज है। बात कुछ भी नहीं। होस्टल के लड़कों को जब मालूम हो जायगा, कि तुम क्रिश्चियन हो, तो मज़ा आ जायगा, सब टूट जायँगे।

रामानन्द—(घबड़ा कर बड़बड़ाता हुआ) तुम लोग बड़े ही वाहियात हो। ईसाई बन जाना! हर्गिज़ नहीं हो सकता।

सोहन—वाह! अब तो तुम्हें बनना ही पड़ेगा। अरे मिस्टर आर० एन० ओझा तो बने ही रहोगे। कौन जानेगा कि तुम ईसाई हो या हिन्दू। दोस्त, मजा आ जायगा। (इशारा करता है)

भगवती—(रामानन्द के पीछे खड़ा होकर) अम्याँ, बाइबिल कहाँ है? बपतिस्मा पढ़ डालना है।

रामानन्द—(घबराकर उठता है) बाइबिल! हरे राम! राम!

भगवती—(डिक्शनरी उठाकर) हाँ भाई, यह है बाइबिल! मिल गई, क्या मौक़े से मिली है। (बपतिस्मा पढ़ता है)

केसरसिंह—मिस्टर आर० एन० ओझा, हल्लो! मिस्टर रॉबर्ट नथैनियल ओझा। (हाथ मिलाकर हँसता है)

(सब लड़के 'राबर्ट नथैनियल ओझा—हिप-हिप हुर्रे!' की आवाज़ लगाते हैं।)

रामानन्द—(क्रोधित होकर दरवाजे के बाहर भागता हुआ) तुम लोग बड़े नीच हो। बड़े धोखेबाज़ हो। (भगवती को मारने दौड़ता है।)

सोहन—(हँसकर) पकड़ो, पकड़ो, इस वक्त इन्हें न जाने क्या हो गया है। अरे, जाने न पावें, प्रेसीडेण्ट तो हम लोग इन्हें बनावेंगे हो।

भगवती—(हाथ पकड़कर) ओझा, अब तुम चले जाओ तो जाने, बपतिस्मा पढ़ा जा चुका है। मजाक नहीं। कानूनन अब तुम ईसाई हो गए।

रामानन्द—(बड़बड़ाता हुआ) मुझे ईसाई कौन बना सकता है? देख लूँगा, दांत तोड़ दूँगा, मार डालूँ गा। धोखा दिया गया, अपमान किया गया। तुम लोग बड़े नोच हो, धूर्त, उल्लू, पाजी कहीं के!

भगवती—(हँसता हुआ) अब तो तुम ईसाई हो ही गये। (समझाकर) चुप रहो, नहीं तो कहीं के न रहोगे। बच्चा, सारो सिट्टा भूल जायगो।

रामानन्द—(दौड़कर सोहन के गले में हाथ लगा कर) अबे, तू मेरा दोस्त है, दुश्मन कहीं का। ईसाई बना दिया।

लानत है, ऐसी प्रेसीडेण्टो पर! (भागता हुआ चिल्लाकर) इन लोगों ने मुझे क्या समझ रक्खा है। मैं एक-एक को भुगत लूँगा। (घूँसा दिखाकर) बस, यही भगवतिया नीच है। इसी ने मुझे ज़लील किया है।

सोहन—(दौड़कर रामानन्द को पकड़ कर) ओझा, पागल तो नहीं हो गये! क्या करते हो, सारा काम बिगड़ रहा है। चलो, बैठो, शान्त हो! नहीं तो सब बिगड़ जायगा। नाम के लिये ईसाई बन जाना कौन-सी बात है? ज़रा-सी बात है।

रामानन्द—(क्रोध में) अबे चल, आया है कहाँ से! धोखा देकर ईसाई बना डाला! ज़रा-सी बात है।

सोहन—(कमरे में ले जाकर) बैठ जाओ, दिमाग़ गरम हो गया है और कोई बात नहीं है। (भगवती की ओर देख कर) भगवती, दिमाग तवे की तरह जल रहा है। दौड़ो, नहीं तो हालत नाज़ुक है।

भगवती—अच्छा तो क्या किया जाय? गजब होना चाहता है। ज्वालामुखी न फट पड़े यार!

सोहन—(आंख मारकर) अरे दौड़ो-दौड़ो, हालत नाज़ुक है।

रामानन्द—चलो, हटो, मर थोड़े-ही जाऊँगा? अभी मैं मरनेवाला नहीं। तुम लोगों को मारकर मरूँगा। क्या समझ रक्खा है?

भगवती—क्यों नहीं भाई, यों तो रावण को ही वरदान मिला था या अब तुम्हीं को। (मुँह बनाकर) मारकर मरूँगा।

अरे, मर जायेगा तो प्रेसीडेण्टी विधवा हो जायेगी, विधवा !!

राधेश्याम—(हकलाकर) अम्याँ छोड़ो भी, उसका वि-वि-वि-वि-वि विधवा व्याह क-क-कर दिया जा-जा-जा-जा जायगा।

सोहन—(मुँह बनाकर, वाह) विधवा-विवाह कैसे ! ओझा के रहते विधवा-विवाह हर्गिज़ नहीं।

(रामानन्द उठकर भागता है और सब उसे जबर्दस्ती पकड़कर बैठाते हैं)

चौथा दृश्य

[स्थान—केसरसिंह का कमरा]

(सोहनलाल, भगवती, केसरसिंह राधेश्याम तथा दो एक अन्य विद्यार्थी बैठे हैं। बीच में रामानन्द बड़बड़ाता हुआ भागने का प्रयत्न करता है)

रामानन्द (क्रोध में) तुम लोग नीचों के सरताज हो। कल मैं तुम लोगों से एक-एक करके भुगतूँगा।

भगवती—अरे भुगत लेना जब भुगतना होगा। आज का भुगतान तो ख़तम करो पहले।

रामानन्द (घूँसा तानकर) तुम सब से नीच हो। भाँड़ों की तरह हाथ मटकाना और नाचना सीख लिया, समझ लिया—जग जीत लिया। बेवकूफ़ कहीं का !

(सब रामानन्द को पकड़कर बैठाते हैं)

भगवती (इशारा करके) लाना तो यार, तेल की शीशी ! प्रेसीडेन्ट का दिमाग़ गरम होगया है।

केसरसिंह—हाँ, हाँ, इनके सर में तेल ठोंक दिया जाय।

रामानन्द (अपने को छुड़ाता हुआ) तुम लोग बड़े नीच हो! मुझे बेवकूफ़ बनाने के लिए बुलाया था।

सोहन (पकड़कर) अरे अब बैठो, कहाँ जाते हो। तेल तो कम-से-कम लगवाते ही जाओ।

भगवती (रामानन्द के पीछे खड़ा होकर) लीजिये जनाब, अभी दिमाग़ तर हुआ जाता है।

(तेल लेकर रामानन्द के सिर पर डालता है। फिर मलता है। 'चट'-'चट' की ध्वनि होती है)

रामानन्द—अरे बाप रे, मार डाला। मुझे क्या मालूम था कि आज मेरी यह दुर्दशा होगी।

(एक के बाद दूसरा उठकर रामानन्द के सिर में तेल ठोंकता है। चट-चट की ध्वनि होती है। रामानन्द क्रोध में भागकर कमरे के बाहर आ जाता है। लड़के हँसते हैं)

रामानन्द (बाँह चढ़ाकर) आओ बेईमानो! एक-एक, करके निबट लो।

भगवती (रामानन्द की ओर बढ़ता हुआ) अच्छा, आ जाओ, पहले मुझ से तो बच जाओ।

सोहनलाल (भगवती से) क्या करते हो भगवती! (मुड़कर रामानन्द से) ओझा, तुम्हें क्या होगया है। वार्डेन आजाएँगे! बड़ा ग़ज़ब हो जायेगा।

रामानन्द—आने दो जिसका जी चाहे, मैं तो सब से निब-टने पर तुल गया हूँ। एक-एक को ठीक कर दूंगा। बिना बदला लिये मैं नहीं जानेवाला! समझ क्या रक्खा है?

भगवती (हाथ मटकाकर) समझ क्या रक्खा है, अफ़ला-तून हैं! मार डालेंगे, फाँसी के तख्ते पर चढ़ा देंगे, सब मालूम जायगा। एक तो प्रेसीडेण्ट बनाने के लिए हम लोग पागल हो रहे हैं, फिर भी यह धौंस!

रामानन्द (क्रोध से) अरे दुष्ट, तेल चुपड़ दिया। (हाथ से तेल पोंछता है, सूँघता है, नाक सिकोड़ता है, सब लड़के क़हक़हा लगाते हैं)

केसरसिंह—तेल तो काफ़ी सुगन्धित होगा।

रामानन्द (क्रोध से दौड़कर) ज्यादा बात करेगा, तो दाँत तोड़ दूँगा।

भगवती (सोहन के कान में) अरे रेण्डी का तेल है, इसी से बिगड़ रहा है।

सोहन—ओझा, ये लोग बड़े नीच हैं। क्या बताऊँ तुम भी परेशान हो रहे हो, और हम लोग भी। बाहर क्यों बड़ब-ड़ाते हो—भीतर आ जाओ।

रामानन्द (बड़बड़ाता हुआ) हाँ, क्यों न भीतर आजाऊँगा, तुम सब से ज्यादा धूर्त हो, दोस्त बनकर सिर काट लिया।

(रामानन्द गालियाँ बकता हुआ आगे बढ़ता है)

भगवती—मि० ओझा, ओ० के०!

(रूमाल हिलाता है)

सोहन—अरे भाई, ज़रा सुनते जाना।

केसरसिंह—'रॉबर्ट नथैनियल ओभा, हिप-हिप हुर्रे'।

राधेश्याम (हकलाकर) ओ-ओ-ओ-ओभा क-क-क-क कहाँ च-च-च-च चले जा रहे हैं ?

भगवती—अरे जाने भी दो ! आखिर रहनेवाला ही कहाँ का है ?......अरे, अरे बड़ा ग़ज़ब होगया !

सोहन—क्या ?

भगवती—अरे मेरा सूट लेगया। पचास रुपये की चपत पड़ गई।

सोहन (हँसता हुआ) हाँ, मार तो गया ! अरे, कल मिल जायगा।

केसरसिंह—जाने भी दो, उसे तंग भी तो बहुत किया गया। कल जाकर ले आना।

भगवती—अच्छी बात है। सूट मेरा कहाँ जायगा, मैं तो वसूल ही कर लूँगा, अच्छा, एक बार बोलो—

प्रेसिडेण्ट रॉबर्ट नथैनियल ओभा—हिप-हिप हुर्रे !

(हिप-हिप हुर्रे की आवाज़ से बोर्डिङ्ग गूँज उठता है। और भी विद्यार्थी वहाँ आजाते हैं और आपस में तरह-तरह की बातें होती हैं)



पति-पत्नी

स्थान—सोने का कमरा।

[मिस्टर एलीफ़ैंट और मिसेज़ एलीफ़ैंटा कमरे में चारपाई पर, आमने-सामने मुँह करके, बैठे हैं। कमरा साधारण सजा हुआ है। कोने में एक छोटी मेज़ और कुर्सियाँ रक्खी हैं। सोने से पहले आपस में वार्तालाप होती है। कमरे के दो ओर तीन छोटी चारपाइयाँ बिछी हैं। उन पर छैः बच्चे सो रहे हैं।]

एलीफ़ैंट (हँसकर) ओ-हो-हो, बड़ी सख़्त गरमी पड़ रही है। पसीने से धोती तर हो रही है। (पैर से धोती ऊपर सरकाता हुआ) ईश्वर भी विचित्र है, गरमी की दुनिया में क्या ज़रूरत थी ?

एलीफ़ैंटा (पान चबाती हुई) वाह, ख़ूब दूर की सूझी ! (पङ्खा झलती हुई) भगवान बड़ा समझदार है। गरमी उसने

बना दो, भुगतना तुम्हारा काम। (ज़ोर से मुँह पर पंखा झाँकती है।)

एलीफ़ैंट (आश्चर्य से) ऐं, मैं भुगतूँ, और तुम ?

एलीफ़ैंटा (पंखा झाँकती हुई भाव-भंगी से) मुझे तो तुम्हारे साथ ज़िन्दगी-भर भुगतना ही है। (अन्यमनस्क होकर) क्या करूँ, परेशानी है।

एलीफ़ैंट (खड़े होकर, नज़दीक जाकर) अरे, तुम्हारा चेहरा कैसा हो रहा है, परेशानी ! परेशानी किस बात की ?

एलीफ़ैंटा (बच्चों की चारपाई की ओर देखकर) छैः छोटे-छोटे बच्चे ! क्या करूँ, कुछ कहा नहीं जाता। (एक बच्चा चिल्लाता है)। देखो, रात-भर जागते ही बीतता है। (जाकर थपथपाती है।)

एलीफ़ैंट (हँसकर) बस, हो-हो-हो-हो ! मैंने कहा, क्या हो गया। एकाएक कौन-सी परेशानी टूट पड़ी ! वाह ! तुम्हारी भी परेशानी कभी-कभी बेक़ाबू हो जाती है। (चारपाई पर बैठता है। एकाएक दूसरा बच्चा रोने लगता है।)

एलीफ़ैन्टा (बच्चे को थपथपाती हुई) बस, यही हाल होता है—एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा। क्या करूँ, यह सब तुम्हारी करतूत है, समझे। (भाव-भङ्गी से चारपाई पर बैठती है।)

एलीफ़ैंट (कुछ नाराज़गी का चेहरा बनाकर) हुँ, मेरी

करतूत है ? और तुम बड़ी भगतिन हो ? परेशान कर डाला, मैं कल घर छोड़कर चला जाऊँगा।

एलीफ़ैंटा (नाराज़ होकर) बस, तुम्हारी तो आदत है, बात मुँह से निकली नहीं कि नोच खाया ! अरे, ज़रा कुछ तो शर्म करो ! पड़ोसी हँसते हैं, हँसते ! (पंखा झलती है।)

एलीफ़ैंट (क्रोध में) पड़ोसी ! वह कौन-सा पड़ोसी है, जो हम लोगों के बीच में दख़ल देता है ! उसकी क्या मजाल कि हँसे ! परमात्मा की देन है ? बड़े-बड़े राजे-महाराजे संतान के लिये तरस रहे हैं। (दाढ़ी खुजाता हुआ) मुझे पड़ोसी मिल जाय, तो नाक काट लूँ।

एलीफ़ैंटा (आश्चर्य से) एँ, नाक काट लूँ ! (पास खड़ी होकर समझाती हुई) नहीं-नहीं, ऐसा न करना, फँस जाओगे, मुसीबत आ जायगी।

एलीफ़ैंट (बड़बड़ाता हुआ) मेरे बीच में दख़ल देनेवाले पड़ोसी कौन होते हैं ? मैं फँस जाऊँगा, तो फँस जाऊँगा, लेकिन हमेशा के लिये मुँह बन्द कर दूँगा। (मुँह फेरकर) कान पक गए सुनते-सुनते। बच्चे, बच्चे, बच्चे !

एलीफ़ैन्टा (रोकती हुई) देखो, रात का वक्त है, ज़ोर-ज़ोर से न बड़बड़ाओ, नहीं कोई सुन लेगा। बेकार फ़साद खड़ा हो जायगा। दीवार के भी कान होते हैं।

एलीफ़ैंट (ज़ोर से) दीवार के कान नहीं, आँख मुँह, हाथ, पैर सब कुछ हों, मैं तो जो कुछ कहता हूँ, सरे-आम कहता हूँ,

और करता हूँ। फिर जिसे जो कुछ करना हो, कर ले। हुँ, परेशान हो गया।

एलीफ़टा (चारपाई पर बैठती हुई) न सुनो, तम्हारी तबियत, लेकिन किसी-न-किसी दिन झगड़ा होकर रहेगा। फँसोगे, तब पता चलेगा!

एलीफ़ैंट (खड़े होकर) बस, यही न कि मुझे सज़ा करा देंगे? करा दें। मैं उनके लिये सज़ा भुगत आऊँगा। जेल ही होगा, फाँसी तो होगी नहीं। उठते-बैठते परेशान किए रहते हैं। (समझाते हुए) अच्छा, तुम्हीं बताओ, यदि मेरे प्रति-वर्ष बच्चे होते हैं, तो मैं क्या करूँ? भाग जाऊँ, शहर छोड़ दूँ, फाँसी लगा लूँ, अपने को मार डालूँ या तुम्हें मार डालूँ? क्या करूँ?

एलीफ़ैंटा—हाँ, यह तो ठीक ही है, फिर पड़ोसवालों के मुँह कौन लगे, कौन कहे?

एलीफ़ैंट (बड़बड़ाता हुआ) मैं कहूँगा, मैं। और कौन कहेगा। मैं—मैं—मैं इनका जानी दुश्मन हूँ। परेशान कर डाला! बच्चे, बच्चे, बच्चे! (तीसरा बच्चा चिल्लाता है।) रोना तो इनका काम ही है। हँसने के दिन आवेंगे, तो हँसेंगे। कल सवेरे देख लूँगा इन पड़ोस के लौंडों को। इन लोगों ने मुझे क्या समझ रक्खा है?

एलीफ़ैंटा—अच्छा, सो जाओ, देर बहुत हो गई है।

एलीफ़ैंट—वाह, यह कोई बात है? मेरे बच्चों के नाम पर

बावैला मचाते रहना कौन-सी अच्छी बात है ? सवेरे मैं खुद ही देखूँगा। सवेरा तो होने दो !

एलीफ़ैंटा (भाव-भंगी से) अरे, सो भी जाओ, तुम्हें तो सनक हो जाती है। ख़ामख़्वाह अपना दिमाग़ ख़राब कर रहे हो।

एलीफ़ैंट—हुँ, मज़ाक़ समझ रक्खा है। जो जिसके जी में आवे, कह डाले। अँगरेज़ी अमलदारी अभी बाक़ी है, शायद ये लोग इसे भूल गए। जेलख़ाने की हवा खानी पड़ेगी।

एलीफ़ैंटा (नाराज़ होकर) तुम्हारी बकवाद में कौन सिर खपावे। कह दिया, सो जाओ। लेकिन अपनी ही बकते चले जा रहे हो। हुँ !

एलीफ़ैंट (नाराज़ होकर) मैं ये बातें एक सेकेंड बरदाश्त नहीं कर सकता। मैं तो आज हर्गिज़ न सोऊँगा। इनके लिये एक रात जागरण ही सही। आज रात जागूँगा, विचार करूँगा, क़ानून की किताबों की धाराओं का मनन करूँगा, देखूँगा, किस धारा के शिकंजे में इन लोगों को फँसाया जा सकता है।

एलीफ़ैंटा—अरे, चुप भी रहो, बात का बतंगड़ बना रहे हो, सोते नहीं चुपचाप। ज़रा-सी बात पर धरती सिर पर उठा ली ! अरे, सबेरा होने दो, देखा जायगा।

एलीफ़ैंट (क्रुद्ध होकर) चुप रहो, कौन होती हो मेरे बीच में दख़ल देनेवाली ? मैं ज़रूर जागूँगा, नहीं सोऊँगा।

(कुछ सोचकर और उँगली दिखाते हुए) तुम, तुम्हीं इस फ़साद की जड़ हो। यह सब तुम्हारी कारस्तानी है। तुम्हारी ही बदौलत आज मेरी नाक कट रही है! बड़ी गुनवती हो। फिर भी कहती हो, सो जाओ। एक नंम्बरी औरत बनी हो।

एलीफ़ैंटा—(आश्चर्य से) तुम्हारी नाक मेरी वजह से कट रही है ? (सिर पर हाथ रखकर) हे भगवान्, क्या करूँ। मेरी मौत भी नहीं आती।

एलीफ़ैंट—हाँ, तुम्हीं फ़साद की जड़ हो। न तुम्हारे इतने बच्चे होते और न मेरी नाक कटती। न-जाने पूर्व-जन्म में क्या पाप किया था। (कुछ स्मरण करके) अरे, वह मेरा बाप नहीं था, दुश्मन था, दुश्मन, जिसने मेरी शादी तुम्हारे साथ कर दी। अगर मैं होता, तो हर्गिज़-हर्गिज़ तुम्हारे ब्याह साथ न करता।

एलीफ़ैंटा—(मुस्किराकर) अब तो ढोल गले पड़ ही गई, क्या करोगे ? और, यदि मैं भी यही कहूँ जो तुम कह रहे हो, तो ?

एलीफ़ैंट—(नाराज होकर) तुम क्या कह सकती हो ? समझ में नहीं आता, क्या करूँ। (पड़ोसियों को गाली देकर) नीच कहीं के, दरवाजे पर देख पड़े, तो मुँह में कालतार लगवा दूँगा। दुष्ट, आवारे !

एलीफ़ैंटा—(पास बैठकर, कंधे पर हाथ रखकर) अच्छा,

अब सबेरा होने में कुछ ही वक़्त बाकी हैं, सो जाओ। सबेरे काम देखना है। मैं ही तो फ़साद की जड़ हूँ।

एलीफ़ैंट—(लेटता हुआ) मैं हर्गिज़ लेट नहीं सकता। दिमाग ख़राब कर दिया। अब कल किसी की न सूनूँगा। दरवाज़े पर खड़ा न होने दूँगा।

एलीफ़ैंटा—अच्छा, सो जाओ। मुँह ढक लो, तो नींद आ जायगी।

(एलीफ़ैंट चादर से मुँह ढक लेता है। चादर के भीतर बड़बड़ाता है। एलीफ़ैंटा अपनी चारपाई पर सो जाती है।)

दूसरा दृश्य

स्थान—किताबों की दूकान

[मिस्टर एलीफ़ैंट ज़मीन पर गद्दी बिछाए बैठा है। सामने छोटी-सी टेबिल है। कमरे में तीन-चार आलमारियाँ किताबों से भरी रक्खी हैं। कमरे के एक ओर एक क्लार्क बैठा है। मिस्टर एलीफ़ैंट सिगरेट पी रहा है। क्लार्क दुबे सामने आकर खड़ा होता है।]

क्लार्क—(कुछ गिड़गिड़ाकर) बाबूजी, पुस्तकों पर क्या कमीशन देना चाहिए ?

एलीफ़ैंट—(एक कश खींचकर) ऐं, कमीशन, कमीशन की क्या ज़रूरत ? कौन है जो कमीशन मांगता है ? हर्गिज कमीशन मत दो।

क्लार्क—बाबूजी बिना कमीशन के एक भी किताब न बिकेगी। आजकल व्यापार डल हो रहा है।

एलीफ़ैंट—हो जाने दो डल, देखा जायगा। किताबें चाहे आलमारी में सड़ जायँ, लेकिन इन कमीशनबाज़ों के हाथ दमड़ी भी न लगने दूँगा। इन लोगों ने किताबों को दुकान नहीं ख़ालाजी का घर समझ रक्खा है!

क्लार्क—(नम्रता से) जैसी आपकी मर्ज़ी। न दीजिए, लेकिन (अपने आप) चटा डालो सारी किताबें दीमकों को, क्या होगा कमीशन देकर। (जाने लगता है।)

एलीफ़ैंट—(कुछ सोचकर एकाएक) सुनो-सुनो, अच्छा, दे दो पचीस प्रतिशत कमीशन। ले जाने दो, यह भी क्या कहेंगे। (समझाकर) लेकिन इससे अगर कोई ज़्यादा माँगे, तो दूकान से निकाल दो। कमीशन लेंगे, मानों हमें दाम लगाना ही नहीं पड़ता। हुँ!

क्लार्क—अच्छी बात है।

(एकाएक दो ग्राहकों का प्रवेश। क्लार्क से बातचीत। क्लार्क का फिर मिस्टर एलीफ़ैंट से बातचीत करना।)

क्लार्क—बाबूजी, (ग्राहकों की ओर इशारा करके) आप किताबें ख़रीदना चाहते हैं, और ३३ प्रतिशत कमीशन माँगते हैं। क्या हर्ज है, अगर दे दिया जाय।

एलीफ़ैंट—(प्रसन्नता से) हाँ-हाँ, कोई हर्ज नहीं। अवश्य

दे दो, अपने ही भाई हैं। देना ही चाहिए। क्यों न दिया जाय। ३३ क्या, ४० प्रतिशत दे सकते हो।

(ग्राहक जाते हैं। एकाएक दो पड़ोसियों, रामेश्वर और परमेश्वर का प्रवेश। साथ में एक संयासी भी है।)

एलीफ़ैंट—(पड़ोसियों की ओर क्रुद्ध दृष्टि से) तुम लोगों की यहां···(संन्यासी की ओर देखकर) आइए, बैठिए, विराजिए। (सब गद्दी पर नीचे बैठते हैं।)

संन्यासी—(प्रसन्नता से) बाबूजी, आप प्रसन्न तो हैं?

एलीफ़ैंट—जी-जी-जी-जी हाँ, आपकी कृपा है। आप तो अच्छी......

संन्यासी—(बात काटकर) जी हाँ, सब आपकी कृपा है।

रामेश्वर—(परमेश्वर के कान में) जी-जी-जी-जी क्या है भई? यहाँ कोई जीजी नहीं; हाँ, जीजा जरूर हैं। मन-ही-मन हँसते हैं।)

एलीफ़ैंट—(क्रोध से देखकर) हाँ, तो महाराज कैसे पधारना हुआ? मेरे योग्य सेवा बताइए। (पड़ोसियों की ओर वक्र दृष्टि से देखता है।)

परमेश्वर—(मुस्किराकर रामेश्वर के कान में) न्योता देने आए हैं तैयार रहिए। (धीरे धीरे हँसता है।)

संन्यासी—(नम्रता से) मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। आशा है आप क्षमा करेंगे।

एलीफ़ैंट—(कुछ शंकित होकर और पड़ोसियों की ओर देखकर) हाँ-हाँ, अवश्य पूछिए। आख़िर आपको क्या दरियाफ्त करना है। (दोनों पड़ोसी मुस्कराते हैं।) पूछिए, मुझे आज बहुत काम करना है।

संन्यासी—(नम्रता से) मैं संतान-निग्रह-प्रचार-समिति का उपदेशक हूँ। मैंने सुना है,......

एलीफ़ैंट—(पड़ोसियों की ओर वक्र दृष्टि से देखकर) उपदेशक! किस बात के उपदेशक हैं? क्या आपको उपदेश की पुस्तकें चाहिए?

संन्यासी—जी नहीं, मैं संतान-निग्रह का प्रचार करता हूँ। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि......

एलीफ़ैंट (बात काटकर मुस्किराते हुए) हुँ-हुँ-हुँ-हुँ, मुझे संतान-वंतान न चाहिए। क्षमा कीजिए। ईश्वर की कृपा से घर भरा है। शीघ्र ही......

सन्यासी (नम्रता से बात काटकर) शीघ्र ही क्या फिर बच्चा होनेवाला है। मैंने आपके पड़ोसियों से सब बातें सुनी हैं। मैं इस शहर में कई दिन से आया हुआ हूं।

एलीफ़ैन्ट (पड़ोसियों पर क्रुद्ध होकर) पड़ोसी! राम-राम! पड़ोसी किसके होते हैं? (उंगली का इशारा करके) ये दोनों तो बड़े ही नीच हैं। इन लोगों ने तो मुझे बदनाम कर दिया। भला, बताइए स्वामीजी! अगर मेरे साल-भर में एक बच्चा हो जाता है, तो मैं क्या करूं? एं, बताइए, भाग्य की बात है।

रामेश्वर (मुस्किराकर साथी से धीरे से) ज़मीन ज़रखेज़ है। (दोनों धीरे-धीरे मुंह फेरकर हंसते हैं।)

संन्यासी—सुना है, आपकी पहली स्त्री का देहांत हो गया, और उनसे कई बच्चे हैं?

एलीफ़ैन्ट (प्रसन्न होकर) जी हाँ, आपको यह कैसे मालूम हुआ? लड़के-लड़कियाँ मिलाकर छ हैं। (उंगली का इशारा करके) देखिए, दो पतंग उड़ा रहे हैं, दो स्कूल गए हैं, और वह देखिए, (दूसरी ओर उँगली दिखाकर) दो गुल्ली-डंडा खेल रहे हैं। (दोनों पड़ोसी मुस्किराते हैं।)

संन्यासी—हाँ, तो आपकी दूसरी शादी भी हुए छः साल हो गए, और भगवान् की कृपा से उनसे भी छः बच्चे हैं, ठीक है न?

एलीफ़ैंट—(प्रसन्न होकर) हाँ-हाँ, भला मेरी शादी क्यों न होती? अकेला मैं कैसे रह सकता था? (उँगली का इशारा करके) स्वामीजी, आप तो वाक़ई पूरे ज्योतिषी हैं। हुं-हुं-हुं-हुं छः बच्चे छोटे-छोटे हैं, आपकी कृपा से सातवाँ भी आने वाला है।

संन्यासी—धन्य हैं आप! अच्छा, तो यह बताइए, आपकी आमदनी क्या है?

एलीफ़ैंट—आमदनी की कुछ न पूछिए। आज-कल बिक्री-बट्टा है नहीं। कोई जायदाद ख़रीदी नहीं। किताबों का ढेर लगा है। बिकीं तो पैसा, नहीं कूड़ा के भाव। क्या किया जाय। क्या बताऊँ, कमीशनवाले अलग परेशान किए रहते हैं, उनका पेट ही नहीं भरता।

ह०—१०

संन्यासी—आख़िर महीने में क्या आमदनी आपको है ?

एलीफैंट—अरे, यही कि लेने-देने पर सौ-सवा सौ बच रहते हैं ?

संन्यासी—आप जानते हैं, दुनिया बदल रही है, आमदनी का यह हाल है, आप निग्रह कीजिए। मुल्क तबाह हो रहा है। इन बच्चों का भविष्य भी आपने कुछ सोचा है ?

रामेश्वर (परमेश्वर के कान में) बटैलियन तैयार हो रही है। लड़ाई पर भेजे जायँगे। (दोनों धीरे-धीरे हँसते हैं।)

एलीफैन्ट—बच्चे ! आपको मेरे बच्चों से क्या मतलब ? (पड़ोसियों की ओर देखकर) बस, ये ही दोनों बदमाश आपको लाए हैं। मैं नहीं जानता था कि आप भी इन लोगों के चक्कर में पड़ जायँगे।

संन्यासी—(नम्रता से) नहीं-नहीं, आप सुनिए भी तो। मैं आपके ही लाभ......

एलीफैंट—(क्रोध में) नहीं-नहीं, मैं आपके-वापके कुछ नहीं सुनना चाहता। मैंने सोचा, भला, कहाँ के उपदेशक टपक पड़े। (खड़े होकर) महाराज, क्षमा कीजिए। बस। (पड़ोसियों से) अच्छा, तुम लोग खसको यहाँ से। मैं अब सब समझ गया, यह सब षड्यंत्र है।

संन्यासी—आपसे मुझे सिर्फ यह कहना है कि निग्रह से रहिए। (उठकर) देश को आबादी की अब आवश्यकता नहीं।

एलीफैंट—देश जाय चूल्हे में, उसे जरूरत नहीं, न सही, मुझे तो जरूरत है। यह सब आप ऐसे स्वामियों का काम नहीं। (चलने का इशारा करके) क्षमा कीजिए, बस।

संन्यासी—आप भूल कर रहे हैं। बच्चों का भविष्य अंधकारमय हो सकता है। (सन्यासी और दोनों पड़ोसी उठकर बाहर निकलते हैं।)

एलीफैंट—चलिए-चलिए, अंधकारमय हो सकता है! आप ब्रह्मा हैं? आप सबका भविष्य लेकर घूम रहे हैं। अरे, जानते हैं आप, हम जनम के साथी हैं, करम के नहीं। (दोनों पड़ोसियों से) इन शोहदों का जादू आप पर भी चल गया। बस-बस, दया कीजिए।

संन्यासी—(चलते हुए) मैंने अपना फर्ज अदा कर दिया। आप जानें, आपका काम।

एलीफैंट—मैं तो जानूंगा ही, और जानता ही हूं। मैंने भी अपना फर्ज अदा कर दिया, कर रहा हूँ, और ईश्वर चाहेगा तो आगे करता रहूंगा।

रामेश्वर—(परमेश्वर से चुपके से) हाँ-हाँ, क्यों नहीं, बड़े बहादुर हो न! खूब फर्ज अदा किए जाओ।

(संन्यासी मिस्टर एलीफैंट को एक नोटिस देते हैं, और दरवाजे के बाहर निकल जाते हैं। एलीफैंट नोटिस पढ़कर अपने क्लार्क दुबे जी से कहता है।

एलीफैंट—मुंशीजी, कल 'बर्थ-कंट्रोल' पर लेक्चर है।

मुंशीजी—कहाँ बाबूजी ?

एलीफेंट—अरे टाउनहॉल में। यह स्वामी आया था उपदेश देने! (उँगली का इशारा करके) आया था मूड़ने, हुं!

नारि मुई, घर-संपति नासी;
मूड़ मुड़ाइ भए संन्यासी।

लेक्चर पिलाने आया था। देखूंगा, कल टाउनहॉल में क्या राग अलापता है। चला है 'बर्थ कंट्रोल' का प्रचार करने!

मुंशीजी—हाँ, बाबूजी, जरूर जाइए।

एलीफैंट—हाँ-हाँ, मैं तो जाऊंगा ही। मुंह बंद कर दूंगा, बोलने न दूंगा। सवालों की झंडी लगा दूंगा। हुं। (आकर गद्दी पर बैठ जाता है, और सिगरेट पीने लगता है।)

तीसरा दृश्य

स्थान—टाउनहॉल

[श्रोताओं की भीड़ जमा है। मिस्टर एलीफैंट भी अपने दो-तीन मित्रों के साथ बैठे हैं। मंच पर कई गण्य-मान्य सज्जन बैठे हैं।]

एलीफैंट—भाई गुलजार, अभी संन्यासी का पता नहीं है। (हँसकर) पड़ गए कहीं उपदेश देने में! हुं-हुं-हुं-हुं।

गुलजार—नहीं, यह बात नहीं। संन्यासी आपसे डर गए, नहीं तो अब तक आ जाते।

एलीफैंट—हाँ-हाँ, मैंने तो उनसे साफ-साफ कह दिया था कि मैं सभा में आऊंगा, और सवालातों के मारे नाक में दम

कर दूंगा। (भाव-भंगी से) उन्होंने कोई गैरा-गैरा नत्थू-खैरा समझ रक्खा था!

गुलज़ार—हाँ-हाँ, यही तो मैं भी कहता हूं। बिलकुल ठीक! ज़रूर सवालात कीजिए, तभी उनकी अक्ल ठीक होगी।

एलीफ़ेंट—हाँ-हाँ, ज़रूर करूँगा। चाहे आज मेरी जान चली जाय, लेकिन देखूंगा, कैसे आगे बढ़ते हैं। 'बर्थ-कंट्रोल' का प्रचार करने चले हैं या पुजाने! हुं-हुं-हु-हुं।

गुलज़ार—नहीं बाबूजी, जान जाय आपके दुश्मन की। हम लोग आपके पीछे हैं। घबराइए नहीं। (उँगली से इशारा करके) वह देखिए, संन्यासीजी आ गए। आने भी दीजिए। आज फ़ैसला हो जायगा।

एलीफ़ेंट—हूं, आ गए! आइए, चलिए, आगे तो बढ़िए। (संभलकर बैठता है।)

(संन्यासीजी का हॉल में प्रवेश। मंच पर प्रारंभिक कार्य-वाही, मंगलाचरण आदि समाप्त हो जाने पर स्वामीजी व्याख्यान प्रारंभ करते हैं। श्रोता बड़े ध्यान से सुनते हैं।)

संन्यासी—भाइयो, आप जानते हैं कि देश बड़ा निर्धन है। चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई है। किंतु हमारे देश की आबादी बढ़ती जा रही है।

एलीफ़ेंट—(खड़े होकर) संन्यासी महाराज, आपने 'भाइयो' क्यों कहा? आपसे अधिक उम्रवाले यहाँ मौजूद हैं।

सब-के-सब आपके भाई कैसे हो सकते हैं ? हुं । (चारों ओर से 'बैठ जाइए' की आवाज़ होती है ।)

संन्यासी—क्षमा कीजिए, मुझे ज़रा अपनी बात कह लेने दीजिए । बाद को शंका-समाधान होगा । (श्रोता आवाज़ लगाते हैं—"एलीफेंट, बैठ जाइए ।")

एलीफेंट—(लोगों को संबोधित करके) भाइयो, यह तो आप लोगों का सरासर अपमान हो रहा है । मैं हर्गिज़ नहीं बैठ सकता । देश की आबादी बढ़ने और घटने का क्या संन्यासी महोदय ने ठेका ले रक्खा है ? (इशारा करके) इनके घर में त्राहि-त्राहि मची होगी । मैं ऐसी बात हर्गिज़ नहीं सुन सकाता । (बैठने के लिये फिर आवाज़ आती है । ।)

सन्यासी—अच्छा महाराज, मेरी भी तो कुछ सुन लीजिए । (बैठने के लिये आवाज़ आती है ।)

एलीफ़न्टा—अच्छा लीजिए, में बैठा जाता हूँ । कहिए, देखुँ, क्या कहते हैं । (बैठता है ।)

संन्यासी—भाइयो, अधिक संतान घर में निर्धनता व्याप्त करती है । आप लोगों को निग्रह से रहना चाहिए । देखिए,...

एलीफ़ैन्ट—(खड़े होकर, बात काटकर) देखिए क्या ? यहाँ आप क्या दिखा रहे हैं, किसको दिखा रहे हैं ? अगर दूसरों की बढ़ती आपसे नहीं देखी जाती, तो आपके संन्यासित्व पर तुफ़ है ! सन्तान, सन्तान, हुँ । (बैठने के लिये आवाज़ आती है)। मैं क्यों बैठ जाऊँ, हर्गिज नहीं बैठूँगा । यह पब्लिक

मीटिंग है। हर एक को बोलने का हक़ है। क्या संन्यासी कहीं के नवाब हैं, जो ज़बान पर ताला लगा लूँ ?। ('चुप रहिए' की आवाज़ आती है।)

संन्यासी—ज़रा चुप रहिए, मुझे कह लेने दीजिए, तब आप कहिए।

एलीफ़ैन्ट—(क्रुद्ध होकर) आपको क्यों कह लेने दूँ। मेरे बच्चों के सम्बन्ध में आपको कुछ भी कहने का क्या हक़ है, (आवाज़ आती है "आपसे कोई वास्ता नहीं") हाँ-हाँ, मैं सब जानता हूँ, जो कुछ भी कहा जा रहा है, सब मेरे ही लिये है। मैं हरगिज़ चुप न रहूँगा।

सभापति—(लोग को समझाकर) आप लोग ख़ामोश बैठ रहिए। आपके बड़े काम की बात सन्यासी जी बतला रहे हैं।

एलीफ़ैन्ट—ये बातें हमारे किसी काम की नहीं। (लोगों को संबोधित करके) भाइयो, हमें क्या ग़रज़ पड़ी है कि बच्चों का उत्पन्न होना रोक दें। यह सब उस परमपिता भगवान् की देन है। हमारे अधिकार से बाहर की बात है। आप ही लोग सोचिए कि ये कैसी उलटी बातें बतलाई जा रही हैं। क़ुदरत के काम में भी दख़ल देनेवाले ये कौन होते हैं ? (आवाज़ आती है—'बैठ जाइए।") मैं हर्गिज़ बैठने वाला नहीं। या तो मैं ही बोलूँगा, या संन्यासी महोदय ही। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। ये सब व्यर्थ की बातें हैं। (संन्यासी की ओर उँगली उठाकर) यह सब आपका जाल है।

किसी की स्त्री, घर-गृहस्थी और बच्चों के मामले में आप कौन बोलनेवाले हैं ? चले हैं स्पीच झाड़ने। हुँ !

(श्रोताओं में से दो व्यक्ति उठते हैं, और मिस्टर एलीफ़ैन्ट को ज़बरदस्ती बैठालते हैं।)

एक व्यक्ति—बस, आप चुपचाप बैठ जाइए, नहीं अच्छा न होगा।

एलीफ़ैन्ट—(क्रोध में) क्यों बैठ जाऊँ। आप कौन होते हैं ? क्या आप संन्यासी महोदय के एजेंट हैं ?

दूसरा व्यक्ति—बस, आप चुपचाप बैठ जाइए।

एलीफ़ैन्ट—मैं तो खड़ा ही रहूँगा। मेरी इच्छा। मैं हरगिज़ नहीं बैठनेवाला।

एक व्यक्ति—(ज़बरदस्ती बैठालता हुआ) बस, अब समझ लीजिए, बैठ जाइए।

एलीफ़ैन्ट—(क्रोध में) अच्छा, लो, बैठ जाता हूँ। (बैठता है।) बस। (फिर खड़ा होता है।)

दूसरा व्यक्ति—फिर खड़े हुए ? कह दिया, बैठ जाइए।

एलीफ़ैन्ट—(नाराज़ होकर) मैं खड़ा और बैठा दोनों रहूँगा। मैं जैसा चहूँगा, वैसा रहूगा। यह पब्लिक मीटिंग है। यहाँ हरएक को स्वतंत्रता है।

सन्यासी—(एलीफ़ैन्ट से हाथ जोड़कर) महाराज, दया कीजिए, बैठ जाइए। अभी आपको बोलने का पूरा मोक़ा दिया जायगा।

एलीफ़ैन्ट— हाँ, मैं सब समझता हूँ। मेरी क्या ग़रज़ है कि बैठ जाऊँ। मैं यहाँ बैठने के लिये नहीं आया। (क्रोध में) मुझे आपसे मौक़ा लेने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं अपना मौक़ा आप ढूँढ़ लूँगा।। (लोगों से) भाइयो, आप लोग व्याख्यान हर्गिज़ न सुनिए। यह सब ढोंग है। पैसा पैदा करने का रोज़-गार है। हमारा और आप का सब का अपमान किया जा रहा है।

(रामेश्वर और परमेश्वर का एलीफ़ैंट के पास आना।)

रामेश्वर—(मुस्किराकर) बैठ जाइए, या चले जाइए, नहीं तो...

एलीफ़ैन्ट—नहीं तो क्या, मुझे फाँसी हो जायगी, मैं क्यों बैठ जाऊँ। (बड़बड़ाता हुआ) तुम लोग नीच हो। तुम्हीं लोगों ने इस साधू को बहकाया है, नहीं तो इस तरह मेरा अप-मान यहाँ न होता।

परमेश्वर—(रामेश्वर से) ये अब नहीं माननेवाले हैं। इनको निकालो यहाँ से।

एलीफ़ैन्ट—(क्रोध में) देखता हूँ, मुझे यहाँ से कौन निका-लता है। मैं तो आज यहीं रहूँगा, चाहे सारी रात बीत जाय। यह हाल तुम लोगों के बाप का नहीं है, म्युनिसिपैलिटी का है, सरकारी है, मैं नहीं निकल सकता।

रामेश्वर—अच्छा, अपनी इज्जत-आबरू लेकर यहाँ से चलते बनिए।

एलीफ़ैन्ट—(क्रोध में) बड़ा चला है इज्जत-आबरू पर हाथ लगानेवाला! चले जाइए। जैसे यह कहीं के लाट कलेक्टर और कोतवाल हैं। मैं हर्गिज़ नहीं जाऊँगा। (श्रोताओं में कोलाहल होता है। सारा हाल गूंजने लगता है।)

(रामेश्वर और परमेश्वर एलीफ़ैन्ट को बाहर ले चलते हैं। एलीफ़ैन्ट बड़बड़ाता है, शोर मचाता है, और क्रोध में अपशब्द बकता है। बाहर से लौटकर रामेश्वर और परमेश्वर हाल में चले आते हैं।)

एलीफ़ैन्ट—(बाहर से ही) मैं बाहर शोर मचाऊँगा, ग़ुल करूंगा। तुम लोग कौन होते हो मुझे निकालनेवाले! यह सरकारी हाल है। मैं आज संन्यासी को देख लूंगा। (पड़ोसियों को संम्बोधित करके) तुम दोनों घर लौटना, तब भुगत लूंगा।

चपरासी—(एलीफ़ैन्ट से) जाइए महाराज, चले जाइए बेकार खोपड़ी न खाइए।

एलीफ़ैन्ट—तू चपरासी है? मैं खोपड़ी खाता हूं? देखते नहीं हो, दुष्ट मेरा अपमान कर रहे हैं। क्या हाल इनके बाप का बनवाया हुआ है?

दूसरा चपरासी—अच्छा, जाइए, होगया।

एलीफ़ैन्ट—वाह, हो कैसे गया? अभी तो बहुत कुछ होना बाक़ी है। देखूंगा। आज इस अपमान का बदला न लिया, तो मेरा नाम एलीफ़ैन्ट नहीं। इन लोगों ने मुझे समझ क्या रक्खा है।

चपरासी—अच्छा, जाइए।

एलीफ़ैन्ट—(जाता हुआ) जाता तो हूं ही। जाऊंगा नहीं, तो क्या यहाँ बैठने आया था। मै तो यहाँ थूकने भी न आऊंगा। अब एक मिनट जो यहाँ रुके, उस पर हज़ार बार लानत है!

(बड़बड़ाता हुआ एली.फ़ैन्ट जाता है। दोनों चपरासी बार-बार उसे देखकर मुस्किराते हैं।

चौथा दृश्य

स्थान—बैठने का कमरा

[मिस्टर एलीफ़ैन्ट और मिसेज़ एली.फ़ैन्टा चारपाई पर आमने-सामने बैठे हैं। चार बच्चे दूसरी पड़ी हुई चारपाइयों पर लेटे हैं। दो फ़र्श पर खेल रहे हैं।)

एलीफ़ैन्ट (प्रसन्न होकर) सुना नहीं, आज सन्यासी महोदय को दुरुस्त कर दिया!

एलीफ़ैन्टा (आश्चर्य से) कैसा संन्यासी ? हाँ, तो क्या हुआ ?

एलीफ़ैन्ट (समझाकर) अरे, एक सन्यासी आया था, कहता था, बच्चे उत्पन्न करना अच्छा नहीं लेक्चर झाड़ने आया था। मैंने वह गच्चा दिया कि याद करता होगा बचा।

एलीफ़ैन्टा—ऐं, गच्चा दिया ? क्या तुमने मार-पीट कर डाली ? कहता तो ठीक ही था।

एलो.फैन्ट—क्या ठीक कहता था कि बच्चे मत पैदा करो। (समझाकर) भला बताओ न, यह तुम्हारे हाथ में है, न मेरे। विधि का विधान कौन रोक सकता है ? होने दो बच्चे ! क्या करेंगे होकर ? होना तो है ही।

एली.फैन्टा—हाँ-हाँ, अभी तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है। जरा बड़े होने दो, तब पता चलेगा।

एली.फैन्ट—क्या पता चलेगा ? मेरी जान लेंगे ? क्या करेंगे, मुझे मार डालेंगे न, बस !

एली.फन्टा—छः सात लड़कियाँ हैं, इनकी शादी के अवसर पर मालूम होगा ! खैर, लड़के तो कमा-खा लेंगे।

एली.फैन्ट—वैसे ही लड़कियाँ भी कमा-खा लेंगी। शादी की मुझे क्या परवा ? शादी अगर उनके भाग्य में लिखो है, तो वर दौड़ते हुए मेरे दरवाजे पर आवेंगे।

एली.फैन्टा—हाँ-हाँ, क्यों नहीं, वर रक्खे हैं, दौड़े आवेंगे। (नाक सिकोड़ती है।)

एली.फैन्ट—हाँ, दोड़ते आवेंगे। देखना। न आवेंगे, न सही। शादी ये अपने आप कर लेंगी। इन्हें जरूरत होगी, तो वरों की कमो नहीं। वर तो मारे-मारे घूमते हैं।

एलीफैन्टा—हाँ-हाँ, क्यों नहीं मारे-मारे घूमते हैं ! एक की शादी तो मुश्किल से हो पाती है, छ-छ की कहाँ से होगी ?

एलीफैन्ट—अजी छ-छ क्या हैं, आवश्यकता हो तो, और भी चार-छ हो लें। हमें क्या करना है। हम तो जनम के साथी हैं, करम के नहीं।

एलीफैन्टा—और करम का कौन साथी है ?

एलीफैन्ट—परमपिता परमात्मा, दयानिधान, जिसने द्वापर में कंस को मार भगाया, और त्रेता में रावण को रगड़ दिया।

एलीफैन्टा—जैसे वह हमारे-तुम्हारे करम का साथी है ?

एलीफैन्ट—हः-हः-हः-हः ! हाँ-हाँ, इसी तरह से। समझती तुम .खूब हो, और चाहे जो कुछ भी हो।

एलीफैंटा—अच्छा, यह तो बताओ, तुमने सन्यासीजी को कुछ कहा तो नहीं ?

एलीफैन्ट—मैंने, मैंने संन्यासी को सब कुछ कह दिया। सब नक़दानक़द कहा, उधार एक भी नहीं। मैंने सोचा, यह भी क्या समझेगा कि किसी से पाला पड़ा था। भागते ही बना आख़िर में। यही समझ लो।

एलीफैन्टा—यह तो बहुत ही बेजा किया ! साधू-महात्मा के साथ यह व्यवहार ठीक नहीं।

एलीफैन्ट—अरे जाने भी दो, ऐसे साधू-महात्मा कितने देख डाले। मैं किस महात्मा से कम हूँ ? ये सब ढोंगी हैं, .खुद को बच्चे मयस्सर नहीं, चले हैं आबादी कम कराने। सरकार तो इस मामले में कुछ कर ही न सकी, यह आए थे उपदेश देने ! हुँ।

एलीफैन्टा—तुम नहीं जानते, साधू-महात्मा का शाप बच्चों पर पड़ता है। तुम्हें क्या ?

एलीफैन्ट—शाप कैसा ? उसके शाप से मेरे बच्चों का क्या बिगड़ सकता है ? तुम जानती नहीं हो, पत्थर की मार से भी ये मरने वाले नहीं। मैं मर जाऊँगा, लेकिन ये मरनेवाले नहीं। समझ लो।

एलीफैन्टा—ऐसी कुभाषा मुँह से न निकालो। तुम न रहोगे, तो मैं क्या करूंगी ?

एलीफैन्ट—तुम, तुम वही करना, जो हमेशा करती हो। (मुस्किराता है।)

एलीफैन्टा—मैं जाती हूं। (अन्यमनस्क होकर उठती है।)

एलीफैन्ट—अरे, तुम नाराज़ हो गई ? वाह, बस ज़रा सी बात पर ! अरे, मैं हर्गिज़ नहीं मरूंगा, अब तो खुश हो। हाँ-हाँ, तुम्हें मारकर, तुम्हें साथ लेकर मरूंगा। समझीं।

एलीफैन्टा—अब ऐसी बातें न कीजिएगा।

एलीफैन्ट—हरे-हरे, हर्गिज़ नहीं। हम-तुम तो एक ही रास्ते के सफ़रमैना हैं। साथ-ही-साथ सफ़र तय करना है, इसका तो अहदनामा हो चुका है। ऐं, समझती हो न। (एलीफैन्टा मुस्कि-राती है।)

एलीफैन्ट—(हाथ पकड़कर) ज़रा ग़ौर से सुनो, कितना बढ़िया दोहा है—

तुम धनिया, हम मिरचा;
चटनी में पिसेंगे दोनों जनें। चटनी०

एलीफैन्टा—(भाव-भंगी से) यह क्या बकते हो वाहियात।

एलीफैन्ट—और भी सुनो—

तुम भुतनी, हम भुतना;
पीपल पर चढ़ेंगे दोनों जनें। पीपल०

एलीफैन्टा—हैं, ये क्या वाहियात बातें कर रहे हो। लो, मैं जाती हू। (उठती है।)

एलीफ़ैन्ट—(हाथ पकड़कर) लो एक और सुनती जाओ—

तुम बटली, हम बटला;
चूल्हे पर पकेंगे दोनों जनें। चूल्हे०

एलीफ़ैन्टा—छोड़ दो मुझे, यही सब तो दूकान पर बैठे, बैठे सीखते हो। बूढ़े हो गए, शऊर तनिक भी नहीं। बारह लड़कों के बाप हुए,......

एलीफ़ैन्ट—शऊर तो मेरे जितना है, तुम्हारे सात पुरखों के भी न रहा होगा) बारह क्या अभी न-जाने कितनों का बाप बनूंगा। क्या समझ रक्खा है। एं।

एलीफ़ैन्टा—(जाती हुई) बनना, देखती हूं, कितनों के बनते हो?

एली.फैन्ट—अरे, चल-चल, मैं तो देखता ही आ रहा हूं। आज ही देख लूंगा। मैं संन्यासी थोड़े ही हूं। मेरा नाम है एली.फैन्ट,यद्यपि देखने में तो अब मैं 'बेंट' हो गया हूं।

(एली'फैन्टा चली जाती है। एली.फैन्ट 'तुम धनियां, हम मिरचा गाता हुआ पुस्तकालय जाता है।)

विवाह की उम्मेदवारी

प्रथम दृश्य

स्थान—आफ़िस रूम

(लाला दुर्गादास अखबार नवीस हैं, विधुर हैं, कुछ सोचते हुए रूम में टहल रहे हैं। गर्दन हिलती जाती है। कोने में पढ़ने लिखने की मेज़ लगी है। एकाएक कुर्सी पर बैठ जाते हैं और एक तस्वीर उठाकर देखने लगते हैं।)

दुर्गादास—(गौर से मनमें) वाकई है तो बड़ा सुन्दर चित्र। यह स्त्री प्रेम करने के काबिल जान पड़ती है। भाई, मेरी इससे शादी हो जाय तो क्या अच्छा हो। अच्छा, अभी खत लिखता हूं। हाँ, यह तो वैश्य हैं और मैं हूं ठाकुर! फिर व्याह कैसे होगा ? नहीं-नहीं समाज बहुत आगे बढ़ गया है। जात-पांत तोड़ कर व्याह होना चाहिए। (तस्वीर के चेहरे पर गाल में एक काला दाग़ देखकर) वाह ! जान पड़ता है इसके

गाल पर काला तिल भी है। यह तो शुभ लक्षण हैं। नाक भी इसकी बिल्कुल तोते की तरह है। ओठ भी सुन्दर है (एकाएक चौंक कर) क्या इसके बाल तो ओठों के ऊपर नहीं हैं। (कुछ हताश होकर) अरे यार, ऐसा न हो मर्दानी कुमारी हो; नहीं तो हमी को धर दबायेगी।

(एकाएक उनकी माता विद्यादेवी कमरे में पधारती हैं। दुर्गादास तस्वीर लेकर मां को दिखाने लगते हैं)

दुर्गादास—माता जी, यह तस्वीर कैसी है? छापने के लिये किसी एजन्सी ने मेरे पास भेजा है।

विद्या विधुर पुत्र की ओर देखकर) हाँ बेटा, तस्वीर तो अच्छी है। यह कहाँ की है?

दुर्गादास (उत्सुकता से) यह काशी के एक वैश्य की पुत्री है। बड़ा ही मशहूर हो रही है। माता-पिता आर्य समाजी खयाल के व्यक्ति हैं।

विद्या—तो फिर तुम इतना गौर से क्यों इस चित्र को देख रहे हो?

दुर्गादास—माताजी, मेरी इच्छा है कि लिखापढ़ी करूं, यदि ठीक हो जाय तो……।

विद्या—(झुंझला कर) बस रहने दो। कई बार मैंने तुम्हारी शादी लगाई लेकिन ऐन मौके पर तुम्हें न जाने क्या हो जाता है। मेरी बात भी खाली गई। और लड़की की तरफ वालों

ने न जाने क्या क्या समझा। इसलिये मेरे तो कर्म में तुम्हारा ब्याह देखना बदा ही नहीं है। क्या किया जाय!

दुर्गादास—(ज़रा रोब में) वाह! कौन कहता है कि मैं ब्याह से इंकार करता हूं। मैं रात-दिन शादी की ही फिक्र में डोला करता ं। लेकिन तुम क्या समझती हो कि मैं किसी ऐसी वैसी से शादी कर लूं? एक तो दूसरी बार की शादी, वह भी अगर मन की न हुई तो जिन्दगी व्यर्थ! मैं तो जात-पांत तोड़-कर शादी करूंगा।

विद्या—लेकिन लड़की की उम्र कुछ ज्यादा मालूम होती है।

दुर्गादास—(कुछ प्रसन्न होकर) नहीं अम्माजी, यह माल चाभती है माल! इसीलिये इसकी उम्र तुम्हें ज्यादा मालूम होती है। फिर तस्वीर में कभी २ भद्दी सूरत भी उतर आती है।

विद्या—तो बेटा, तुमने आखिर तय क्या किया?

दुर्गादास—अम्माजी, मैंनेह सोच लिया है। मैं तो अब अवश्य ही इन्हीं के साथ जीवन-नैया पार लगाऊँगा? देखा जायेगा।

(एकाएक सद्गुरु का प्रवेश। सद्गुरु भी अविवाहित है। दुर्गादास का चचेरा भाई है। वह भी ब्याह के फेर में पांच साल से टटोल रहा है)

सद्गुरु (कुछ मुस्कुरा कर) माताजी प्रणाम! (दुर्गादास की ओर देखकर) क्या है, भाई दुर्गा। किसके

साथ जीवन-नैया पार लगाने जा रहे हो? ज़रा मुझे भी तो कभी-कभी कुछ बता दिया करो। (सद्गुरु बैठ जाता है)

दुर्गा (तस्वीर दिखाकर) अच्छा, बताओ यह तस्वीर कैसी है? खूबसूरत है न?

सद्गुरु (खड़ा होकर) भई वाह! वाकई है तो तस्वीर ला जवाब! कहाँ से आई है, क्या नाम-गाम है? पता ठिकाना तो बताओ? (तस्वीर गौर से देखकर) अरे, क्या इनका विवाह होगया है?

दुर्गा (कुछ अप्रसन्न होकर) अरे आँख के अंधे नाम नयन-सुख! यह कुमारी रामरानी जी हैं। बड़ी ही अजीब तबीयत पाई हैं, इनका विवाह होने वाला है।

सद्गुरु—अच्छा, अभी व्याहता नहीं हैं। मैंने तो समझा था कि यह दो-एक बच्चों की माँ होंगी।

दुर्गा—जी हाँ, बस जो तुम समझ सकोगे वह तो ठीक ही है। देखो अब मैं......।

सद्गुरु—मैं क्या? क्या कुछ दाल में काला है?

दुर्गा—अरे बेवकूफ़ दाल में काला तो चोर बदमाशों के लिए होता है। दाल में काला नहीं दाल में मसाला है।

सद्गुरु—अच्छा अब समझ में आया! हूँ, तुम इनसे विवाह करना चाहते हो। फिर यह बात क्यों नहीं कहते हो?

दुर्गा—चाहते क्या हैं, चाह लिया (अम्मा की ओर देख-कर) क्यों अम्मा जी, ठीक है न! अब तुम टप्पा गाओ।

(सद्गुरु अन्यमनस्क होकर कुर्सी पर बैठ जाता है। और मेज़ पर रखे हुए कागज़ पत्र उलटने लगता है। एकाएक उसे एक दूसरी तस्वीर मिल जाती है।)

सद्गुरु (तस्वीर हाथ में लेकर) क्यों भाई, साहब यह किसकी तस्वीर है ? यह तो हूबहू वही तस्वीर है ?

दुर्गा (तस्वीर देखकर) अरे, इसकी तो मुझे याद ही नहीं थी। यह तस्वीर कुमारी रामरानो की छोटी बहन की है।

सद्गुरु—भई, यह तस्वीर तो बड़ी ही सुन्दर है। जी चाहता है कि......।

दुर्गा—तुम हो बड़े भाग्यवान ! अच्छे मौके से आये। नहीं तो कौन जाने अभी कितनी ठोकरें खानी पड़तीं।

सद्गुरु—भाई, बस ठीक ठाक कराना तुम्हारे ही हाथ में है। (एकाएक अम्मा जी बोल उठती है)

विद्या—अच्छा तुम लोगों ने तस्वीरें देख लीं, और तुम लोग चाहते क्या हो, यह भी मैं समझ गई। अच्छा दुर्गा, तुम इनके माता-पिता से लिखा पढ़ी करो। मेरी इच्छा है कि तुम दोनों की शादी इन्हीं दोनों से हो जाय तो अच्छा है। मेरी भी इच्छा पूरी हो जायगा।

दुर्गा—हाँ माता जी, आप ठीक कहती हैं। आपकी आज्ञा पालन करूँगा। बात यह है कि इनके माता-पिता बड़े भारी आर्य-समाजी हैं। जात-पाँत तो उनके सामने कोई चीज नहीं

है। इसीलिये मुझे तो ऐसा लगता है कि मामला ठीक हो जायेगा। हम लोगों के हृदय की प्यास बुझती नज़र आयेगी। आज ही मैं चिट्ठी लिख रहा हूँ।

(तीनों व्यक्तियों का प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—आफिस रूम

(दुर्गादास बाहर से आई हुई चिट्ठी बार-बार पढ़कर प्रसन्न होता है और कमरे में एक ओर से दूसरी ओर तक टहलता जाता है ! एकाएक अम्मा जी, ओ अम्मा जी, की आवाज़ लगाता है। अम्मा जी एकाएक आ जाती हैं)

दुर्गा—माता जी, देखिये यह पत्र। बस हम लोगों को शाहजहाँपुर चल देना चाहिए। आज ही तैयारी कर डालो। माता जी, आप भी चलिये तो बड़ा अच्छा हो। लड़की के मामले में मैं ज्यादा नहीं जान सकता।

विद्या—हाँ, हाँ अवश्य चलूँगी। आज तैयारी करो।

दुर्गा—हाँ माता जी, और किनको साथ ले चला जाय ?

विद्या—सद्गुरु को भी लेते चलो। लगे हाथों उसको भी निबटाती आऊँ। बस तीन जने काफी हैं।

दुर्गा—नहीं माता जी, सद्गुरु को साथ न ले चलिये। मामला गड़बड़ हो जायगा। अरे तय तो हमी लोगों को करना

है। उसका भी मामला तै करते आवेंगे। हाँ, हाँ याद आ गया। आचार्य धुरन्धर जी को जरूर लेते चलिये। वह ज़रा बातचीत में तेज़ हैं। फिर उन लोगों पर थोड़ा प्रभाव भी तो जमाना है।

विद्या—अच्छा जैसा तुम चाहो। करो।

दुर्गा—बस माता जी, मेरा कहना मानलो। बस, अब तैयारी करो।

(विद्यादेवी चली जाती हैं। दुर्गादास अपना ट्रंक, कपड़ा-लत्ता सँभालने में लगते हैं। बाजार से पाँच जोड़ा जूता लाकर खास तौर से बक्स में रखते हैं। सब सामान ठीक हो जाता है। आचार्य धुरन्धरजी भी पधारते हैं)

धुरन्धर—क्यों जी दुर्गादास, आखिर कब रवाना हुआ जायगा ? आधा घंटा ट्रेन छूटने में बाकी है।

दुर्गा—एँ, सिर्फ आधा घंटा (इधर उधर घूमने लगता है, एकाएक क्रोधित होकर) न जाने साले नौकर कहाँ मर गये। अबे, ओ कलुआ के बच्चे ! माता जी को बुला जल्दी। (नौकर को आता न देखकर नाराज़ होता है) साले ऐन मौके पर गायब हैं। सब हराम का खा रहे हैं। अबे, ओ कलुआ के बच्चे !

(कल्लू का प्रवेश)

कल्लू—हुजूर !

दुर्गादास—(कल्लू की ओर दौड़कर) तबीयत होती है कि तेरी नाक काट लूँ। बेईमान कहाँ था ? ट्रेन छूट रही है।

माताजी को जल्दी बुला (धुरन्धर) क्यों भई, सब सामान ठीक ठीक है न ? देख लो। ऐसा न हो कुछ रह जाय।

धुरन्धर (इधर उधर देखकर) हाँ ठीक ही है। आपने तो सब कुछ ठीक ही कर लिया होगा। अच्छा, तब तक तांगा बुलवाओ। अब देर करना ठीक नहीं।

(दुर्गादास मकान के बाहर सड़क पर दौड़ा जाता है। एक तांगे वाले को देखकर) ओ तांगेवाले, जल्दी आ जल्दी। स्टेशन चलना है। (तांगावाला आफिस की ओर देखता है) अबे देखता क्या है, क्या पैसा नहीं लेगा, जल्दी आ, स्टेशन से गाड़ी छूट रही है। (तांगेवाला दरवाजे पर आता है)

तांगेवाला—क्या दीजियेगा बाबू साहब ?

दुर्गादास (क्रोध में जेब से नोट निकाल कर तांगेवाले की नाक के पास ले जाकर) ले बे ले, दस बीस, तीस जो लेना हो, ले, तू आखिर मुझे समझता क्या है ?

तांगेवाला—हुज़ूर, मैंने तो योंही पूछा था। इसमें बिगड़ने की कौन सी बात है।

दुर्गादास—बेवकूफ़, समझता नहीं है, मैं कहाँ जारहा हूँ। क्या तूने मुझे ऐरा गैरा नत्थू खैरा समझ रखा है ?

(दुर्गादास भीतर लौट आता है। कल्लू सब सामान तांगे पर लादता है। धुरन्धर जी, दुर्गादास और माताजी तांगे पर बैठती हैं। तांगावाला घोड़े को हाँकता है, और मुँह से कुछ आवाज़ करता है)

दुर्गादास—अबे, जल्दी तांगा हाँक, देर हो रही है।

तांगावाला—आप तो अजीब हैं। चलते ही चलते चलूँगा। बाबू साहब यह तांगा है तांगा, मोटर नहीं।

दुर्गादास (तांगे से नीचे उतर कर) अबे, क्या बकता है ? जरा दुबारा तो कह। इस वक्त तुझे मोटर बनना पड़ेगा। अगर ट्रेन न मिली तो समझ लूँगा।

(चार पाँच राहगीर इकट्ठे हो जाते हैं)

एक राहगीर—क्या है बाबू जी, क्यों बिगड़ रहे हैं ?

तांगेवाला—भैया, देखिये तो सही, जबरदस्ती कहते हैं कि मोटर बन जाओ।

दुर्गादास (क्रोध में) हाँ हाँ, कहता हूँ कि मोटर बन, जल्दी चल। जानता नहीं मैं किस काम से कहाँ जा रहा हूँ। शैतान कहीं का, बहस करता है। (लोगों की ओर देख कर) देखिये न, व्यर्थ में बखेड़ा करता है।

लोग कहते हैं—अच्छा भई जल्दी हाँक, बाबू साहब को वाकई जल्दी जान पड़ती है।

धुरन्धर—अरे भाई, दस मिनट रह गये। आखिर न चलना हो तो लौट चलो। (मुसकरा कर मुँह फेर लेता है। फिर कुछ गम्भीर हो जाता है)

दुर्गा (अपनी कलाई की घड़ी देखता है। लेकिन घड़ी न देखकर) अरे धुरन्धर जी, घड़ी तो मैं घर ही भूल आया। अब

क्या किया जाय। अच्छा, तुम सब ठहरो, मैं अभी लपक कर आया।

(दुर्गादास रिस्टवाच लेने के लिए घर की ओर दौड़ते हैं। इतने में एक कुत्ता भौं भौं करके उनके आगे दौड़ता है। दुर्गादास मार्ग का ढेला उठा कर उसे मारने दौड़ते हैं और घर की ओर भागते जाते हैं)

दुर्गादास (घर में आकर क्रोध में) ओ बे कलुआ के बच्चे, कहाँ है ? कहाँ है मेरी रिस्टवाच ! अबे तूने बताया क्यों नहीं, (कल्लू का गला पकड़ कर दबाता है और दाँत पीसता है)

कल्लू—बाबू जी, घड़ी तो आप मेज़ पर छोड़ गये थे। मैं क्या जानूं।

दुर्गादास (घड़ी लेकर बड़बड़ाता हुआ आगे बढ़ता है) अच्छा ठहर जा, बदमाश मैं वापस आ जाऊं तब तुम सब की खबर लूंगा। तुम लोगों को एक एक को निकालूंगा।

(दुर्गादास तांगे के पास पहुँच जाता है। तांगे पर चुपचाप बैठ जाता है। तांगावाला बेतहाशा तांगा स्टेशन की ओर भगाता है। पाँच मिनट गाड़ी छूटने में शेष है। ठीक वक्त पर सब के सब स्टेशन पर आ जाते हैं।)

तीसरा दृश्य

स्थान—स्टेशन

दुर्गादास—क्यों भाई धुरन्धर, किस क्लास का टिकट लेना चाहिए ?

धुरन्धर—थर्ड क्लास का लीजिए, क्यों व्यर्थ में पैसा बरबाद कीजियेगा।

दुर्गादास—वाह, यह कैसी बात करते हो। कहो तो पहले दर्जे का टिकट खरीदा जाय। क्यों माताजी, आप की क्या राय है?

विद्या—क्या करोगे बेटा पहले दर्जे का टिकट। तीसरे दर्जे का खरीद लो।

दुर्गादास—वाह माताजी, आप भी धुरन्धरजी से मिल गईं। वहाँ वाले स्टेशन पर स्वागत के लिये आवेंगे। उन लोगों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? वहाँ, क्या हम लोग अपनी बेइज्जती कराने जा रहे हैं?

धुरन्धर—भई, जो कुछ आपको करना हो जल्दी कीजिए, देर हो रही है।

दुर्गादास—अच्छा भई, आप लोगों का ही कहना सही। लेकिन मुझे तो किसी न किसी आखिरी स्टेशन पर पहले दर्जे का टिकट लेना ही पड़ेगा।

(टिकट खरीद कर तीनों व्यक्ति प्लेटफार्म पर आते हैं और थर्ड क्लास में सवार होते हैं। गाड़ी लेट थी। यह जान कर दुर्गादास अत्यन्त गद्‌गद्‌ हुए और अपने मन में यह सोच लिया कि प्रेमी का प्रेम अवश्य ही सफलीभूत होगा।

दुर्गादास—(धुरन्धर जी से चलती ट्रेन में) क्यों भाई, अगर अभी रेल लड़ जाय तो क्या हो?

धुरन्धर—क्यों व्यर्थ की बातें बकते हो। ऐसे शुभ काम के लिये आते वक्त ऐसी बातें न करनी चाहिए।

बिया (एकाएक बिगड़ कर) क्या बातें बकते हो। दुर्गादास, तुम्हें और कोई बात ही नहीं है? राम! राम! ऐसी अशुभ बात! रेल गई चूल्हे में!

(एकाएक शाहजहाँपुर स्टेशन के पहले का स्टेशन आ जाता है। दुर्गादास घबरा उठते हैं। रेल स्टेशन पर रुक जाती है। दुर्गादास प्लेटफार्म पर उतर कर टिकट घर की ओर भागते हैं।

दुर्गादास (टिकट बाबू से) बाबूजी, पहले दर्जे का एक टिकट दीजिए।

टिकटबाबू—एं, कहाँ से आ रहे हैं?

दुर्गादास—बनारस से।

टिकटबाबू—कहाँ जाइयेगा?

दुर्गादास—शाहजहाँपुर!

टिकटबाबू—फिर यहाँ आप को टिकट लेने से क्या प्रयोजन?

दुर्गादास—अरे बाबू साहब गाड़ी छूट रही है। यह मेरा टिकट देखिये (थर्ड क्लास का टिकट दिखाता हुआ) आपको प्रयोजन से क्या वास्ता! मैं जहन्नुम में जा रहा हूँ।

टिकटबाबू—लीजिए साहब, टिकट। आप जहन्नुम में न जाइये। जहां जाना हो वहीं जाइये।

(दुर्गादास—टिकट लेकर गाड़ी की ओर दौड़ता है। गाड़ी छूट गई है। विद्या देवी और धुरन्धर जी दुर्गादास को देख कर हाथ हिलाते और चिल्लाते हैं। दुर्गादास पहले दर्जे के डिब्बे की पटरी पर चढ़ जाता है। दरवाज़ा खोलने की कोशिश करता है। दरवाज़ा न खुलने पर किसी तरह लाँघ कर पहले दर्जे में चढ़ जाता है। वह हाँफता और पसीना पोंछता हुआ बैठता है। डिब्बे में कुछ अंग्रेज और बंगाली भी बैठे हैं।)

एक बंगाली (दुर्गादास को परेशान देखकर) बाबू, तुम कहाँ जाना मांगता है ?

दुर्गादास (क्रोध में) क्या आप से मतलब ! मैं जहन्नुम में जा रहा हूँ।

दूसरा बंगाली (पहले बंगाली से) पागल तो नहीं है। अच्छा इसका टिकट देखो। यह ज़रूर यों ही चढ़ आया है।

पहला बंगाली—कहिये जनाब, आपने टिकट विकट भी खरीदा है या नहीं ? या यों ही चलती गाड़ी पर बैठ गये।

दुर्गादास (बिगड़ कर) देखिये, आप लोग मुझसे इगिड़-तिगिड़ न कीजिए। नहीं अभी मैं जंजीर खींच लूँगा। (जंजीर के पास चिपकी हुई तख्ती देखता है)

दूसरा बंगाली—अभी पचास रुपये ठुक जायेंगे, तब पता चलेगा। चला है कहीं का जंजीर खींचने ! टिकट विकट है नहीं, जंजीर खींचेंगे।

दुर्गादास (टिकट निकाल कर एक बंगाली बाबू के मुँह में लगाकर) देख ले, देख। यह टिकट नहीं तो और क्या है ?

(इतने में दो एक अंगरेज़ दुर्गादास की हरकतों से नाराज़ हो जाते हैं। उनमें से एक बोल उठता हैं।)

एक,अंग्रेज़—हू आर यू ? गेट आउट फ्रोम दिस रूम।

दुर्गादास—वाह ! मैं...मैं—मैं—मैं।

दूसरा अंग्रेज—मैं—मैं—मैं—मैं गेट आउट फ्रोम दिस रूम।

(एकाएक शाहजहाँ पुर स्टेशन आता है। दुर्गादास बड़बड़ाता हुआ कम्पार्टमेंट से निकलता है और घूँसा दिखाता हुआ आगे बढ़ता है। विद्या देवी, धुरन्धर जी और दुर्गादास वेटिंग-रूप में जाते हैं और दुर्गादास अपनी पूरी तरह से सजावट करते हैं)

दुर्गादास (ठाठ बाट करके) क्यों जी धुरन्धर देखो तो बाहर जाकर, कोई वहाँ से आये हैं या नहीं।

(धुरन्धर बाहर जाकर वापस आते हैं)

धुरन्धर—हमें तो यहाँ एक चिड़िया भी नज़र नहीं आती।

दुर्गादास (क्रोध में) साले पाजी हैं। मैं उनको भी खबर लूँगा। अच्छा चलो तैयारी करो। देखो, अगर कोई टॅक्सी हो तो मँगवाओ।

(धुरन्धर बाहर जाते हैं और लौटकर आते हैं)

धुरन्धर—भई टैक्सी का तो यहाँ नाम नहीं है। केवल एक इक्का है। वह भी ससुरा ऐसा मरियल है कि क्या कहा जाय, (दुर्गादास को देखकर हँसता है)

दुर्गादास—एं, टैक्सी का नाम नहीं? कहाँ ऐसे मुल्क में आये। अब क्या किया जाय?

धुरन्धर—सिवा इस इक्के के कोई सहारा नहीं है। इस ट्रेन के बाद दूसरी ट्रेन भी न आती है न जाती है। इस लिये अब सवारी की कोई आशा भी नहीं है। इसलिये चलना ही पड़ेगा।

दुर्गादास—अच्छा चलो फिर! लेकिन अगर कोई देख लेगा तो इज्जत मिट्टी में मिल जायेगी!

धुरन्धर—आप भी विचित्र हैं। अरे यहाँ कौन पहचानता है कि आप राजा भोज हैं कि गांगू तेली। कितने हो मुसाफिर आया-जाया करते हैं। कौन जाने तुम कौन हो।

दुर्गादास—अच्छा भई, चलो।

(मुँह नीचे करके तीनों व्यक्ति इक्के पर सवार होते हैं। इक्का धीरे धीरे रवाना होता है।)

दुर्गादास (धुरन्धर से) क्यों जी ठहरना कहाँ होगा?

धुरन्धर—बाजार में कहीं भी दो दिन के लिये किराये का मकान लेकर ठहर जायेंगे।

दुर्गादास—क्या धर्मशाला में ठहरना ठीक न होगा?

धुरन्धर—आप भी अजीब आदमी हैं (धर्मशाले में कहीं

भले आदमी ठहरते हैं। वहाँ लुच्चे, लफंगे, लड़कियों को भगाने वाले, यही लोग ठहरते हैं।

दुर्गादास—अच्छी बात है। (एकाएक इक्के वाले पर कुपित होकर) अबे जल्दी जल्दी हाँक। कहाँ से आकर तू गले पड़ गया। ऐसी मरियल घोड़ी क्या हमी लोगों के भाग्य में बदी थी ?

इक्कावाला—चलता तो हूँ बाबूजी, अब कैसे चलूँ। क्या हवाई जहाज है ?

दुर्गादास—हुँ, हवाई जहाज बनेगा। आंख का अन्धा नाम नयनसुख।

इक्कावाला—बस बाबूजी फिजूल में हुज्जत न कीजिए।

दुर्गादास—(इक्के से कूद कर) अरे बेवकूफ, यह हुज्जत है। पैसा नहीं दिया ? सेंत-मेत चलता है ? (धुरन्धर जी और विद्यादेवी दुर्गादास को रोकती हैं)

धुरन्धर—क्या करते हैं आप ? सोचते समझते नहीं। अभी कोई देख लेगा तो सब गुड़ गोबर हो जायगा।

(दुर्गादास कुछ भयभीत होकर इक्के पर चुप चाप बैठ जाता है। सब के सब बाजार में पहुँचते हैं और एक किराये का मकान लेकर ठहर जाते हैं। लड़कीवालों को सूचना दी जाती है। लड़कियों और उनके बाप से प्रातः आठ बजे मिलने का समय मुकर्रर होता है।)

चौथा दृश्य

[स्थान—घर का एक साफ़ कमरा]

धुरन्धर—दुर्गादास, अब जल्दी नहा धोकर निबट लो। वक्त हो गया है। अब वह सब आते ही होंगे।

दुर्गादास—अच्छा मैं स्नान करने जाता हूँ।

(उसी कमरे में स्नान घर भी था। स्नान घर से स्नान करके उसी कमरे में दाखिल होना पड़ता था। जिसमें सब लोग ठहरे थे और जहाँ लड़की वाले से बात-चीत होने वाली थी। एकाएक किसी के आने की आवाज़ होती है। एक वृद्ध दो युवतियों के साथ कमरे में प्रवेश करता है)

वृद्ध—कोई है—दुर्गादास हैं ?

धुरन्धर—ओ हो, आप हैं, आइये, आइये, पधारिये। (लड़कियों की ओर देखकर) देवियो ! स्वागत है।

(सब को कमरे में यथा-स्थान बैठालता है। एक ओर विद्यादेवी और दूसरी ओर धुरन्धर जी बैठते हैं। धुरन्धरजी लड़कियों की ओर कनखियों से देखते जाते हैं और रूमाल से मुँह पोंछते जाते हैं।)

वृद्ध—हाँ, तो दुर्गादास जी कहाँ हैं ?

धुरन्धर—हाँ हाँ, अभी आते ही हैं। (स्नान घर की ओर बार बार देखता है।)

वृद्ध—(धुरन्धर जी से) श्रीमती जी कौन हैं ?

धुरन्धर (माता जी को इशारा करके) यह भाई दुर्गादास की माता हैं (सब लोग विद्या देवी को नमस्कार करते हैं। वृद्ध बड़े गौर से विद्यादेवी की ओर देखता रह जाता है।)

वृद्ध—हाँ, तो करीब एक घंटे के हो रहे हैं ! क्या बात है ? दुर्गादास जी का अभी तक पता ही नहीं ?

धुरन्धर (स्नान-घर की ओर देखकर) हाँ, हाँ आते ही हैं।

(दुर्गादास स्नानघर में सिर्फ एक तौलिया पहन कर नहा रहे हैं। उनकी धोती और कपड़े उसी कमरे में रखे हुए हैं जहाँ सब लोग बैठे हैं। स्नानघर में वे परेशान हैं। दांत पीसते हैं। स्नानागार में चारों ओर चक्कर काटता हैं।)

दुर्गादास (दांत पीसते हुए) हुँ, क्या करूँ समझ में नहीं आता। बस-बस, इस धुरन्धर की सब कार्रवाई है। इन लोगों को बाहर क्यों नहीं निकाल ले जाता। स्नान-घर में तौलिया पहन कर घूमता है।)

वृद्ध—क्या दुर्गादास को देर लगेगी ?

धुरन्धर (खड़ा होकर) नहीं नहीं, आइये ज़रा बाहर मुझे आप से कुछ बातें करनी हैं। (वृद्ध लड़कियों के साथ बाहर आते हैं।)

दुर्गादास (क्रोध में) नीच कहीं का। (माताजी स्नान-घर का दरवाजा खड़खड़ाती हैं। दुर्गादास क्रोध में बाहर निकल आता हैं, और बड़बड़ाता हुआ कपड़ा पहन कर तुरन्त लैस हो जाता है)

धुरन्धर (वृद्ध से बातें करते हुये और भीतर की ओर देखते हुए) अच्छा भीतर चलिये, शायद दुर्गादास आ गये हों।

(सब के सब फिर भीतर पहुँचते हैं। दुर्गादास का सब से नमस्कार होता है। सब लोग बैठते हैं। दुर्गादास लड़कियों की ओर बड़े ध्यान से देखता है)

वृद्ध—हाँ, मैं आ गया हूँ। कहिये क्या आज्ञा है? (कन्याओं की ओर इशारा करके) हाँ, यही मेरी कन्यायें हैं (इशारे से) यह मेरी बड़ी कन्या त्रिवेणी है और यह सावित्री छोटी। (दुर्गादास बड़ी प्रसन्नता से सावित्री की तरफ देखता है) अच्छा, हाँ तो निर्णय कीजिये। हमें ज़रा जल्दी है।

दुर्गादास (सावित्री की ओर देखता जाता है और खड़ा होकर टहलता हुआ) नहीं नहीं बैठिये, खाइये (खाट का इशारा करके) चारपाई बिछी है, आराम कीजिये। जल्दी क्या है। सब ठीक ही समझिये।

माता जी—हाँ-हाँ, और क्या।

वृद्ध—नहीं, जल्दी ही कुछ निश्चय हो जाना चाहिये।

दुर्गादास (धुरन्धर को अलग बुलाकर) भई मैंने तो अभी अभी तय किया है कि छोटी से ही शादी करूँगा।

धुरन्धर (आश्चर्य से) एँ यह क्या? आप तो बड़ी से शादी करने के लिए उनको लिख चुके हैं। आखिर मामला क्या है?

दुर्गा—मामला-वामला कुछ नहीं। मेरी तबीयत लग गई है। बड़ी ज़रा कुछ स्थूल-काय भी है। इससे तबीयत और भी भड़कती है।

धुरन्धर—आपकी तबीयत का कुछ ठिकाना भी है। ये लोग क्या समझेंगे ?

दुर्गा—समझें जो समझना हो। मेरा तो निर्णय यही है कि मैं छोटी के साथ शादी करूँगा।

धुरन्धर—फिर तुम्हारे भाई साहब की शादी किससे होगी ? तय तो यह पाया गया था कि बड़ी से तुम शादी करो और छोटी से तुम्हारे भाई साहब !

दुर्गा—हाँ, हुआ तो था, लेकिन अब तो मैं ही छोटी से करूँगा। भाई चाहे तो बड़ा से कर ले, नहीं तो उसे अभी शादी की कौन सी जल्दी पड़ी है ?

धुरन्धर-–भई वाह ! यह तो अच्छा टंटा खड़ा होगया।

(दोनों आकर बैठ जाते हैं। दुर्गा वहाँ से बाहर चला जाता है)

धुरन्धर (वृद्ध से) देखिये महोदय, तय यह पाया गया है कि छोटी लड़की के साथ दुर्गादास शादी करना चाहते हैं, बड़ी से नहीं।

वृद्ध (क्रोध में) यह कैसे हो सकता है ? मैं यहाँ वृद्ध विवाह करने नहीं आया हूँ। आपने तो पहले बड़ी के साथ शादी तै की थी, अब यह क्या कह रहे हैं ?

धुरन्धर—जो कुछ भी आप समझिये, होगा ऐसा ही।

वृद्ध (क्रोध में खड़ा होकर) मुझे नहीं मालूम था कि संसार में सभ्यता की आड़ में इस तरह का खेल खेला जाता है। (लड़कियों से) चलो उठो, कहाँ इस झंझट में आ फंसे।

(एकाएक वृद्ध लड़कियों के साथ घर के बाहर हो जाते हैं। माता जी और धुरन्धर विचार- मग्न हो जाते हैं। दुर्गादास भी टहलते टहलते वहाँ आकर बैठ जाता है)

दुर्गादास (आश्चर्य से) एं, क्या सब चले गये ?

माताजी (बिगड़कर) दुर्गा, समझ में नहीं आता कि तुम्हारा दिमाग ऐन मौके पर कैसा हो जाता है।

(दुर्गादास क्रोध में खड़ा होकर बड़बड़ाता है और वृद्ध को भला बुरा कहता है)

दुर्गादास—अच्छा, चलो इसी वक्त घर। मैं यहाँ एक मिनट न ठहरूँगा। अखबार लेट हो जायगा। देखता हूँ बच्चू बुढ़ऊ अपनी लड़कियों की शादी किस अफलातून से कर देते हैं। समझ लूँगा। जानते नहीं हैं कि मैं अखबार नबीस हूँ ?

(धुरन्धर, माताजी और दुर्गादास तांगे पर चढ़कर स्टेशन की ओर प्रस्थान करते हैं।)

आनरेरी मजिस्ट्रेट

पहला दृश्य

स्थान—बुद्धूमल का कमरा ।

(बुद्धूमल कमरे में बैठे हैं। कुछ चिंतित जान पड़ते हैं। हुक्का गुड़गुड़ा कर खांसते भी हैं। फर्श पर दो-तीन खुशामदी बैठे हैं।)

बुद्धूमल (हुक्का गुड़गुड़ा कर जोश से) क्या बतायें, बड़ा ग़जब हो रहा है ?

एक व्यक्ति (आश्चर्य से) क्या हुआ हुज़ूर ! (चारों ओर देखकर) क्या होगया हुज़ूर ?

बुद्धूमल (मेज पर हाथ पटक कर) हुँ, नये की नाइन बांस की नहन्नो ! निकाल देंगे-बेटा लोग ! चले हैं मजिस्ट्रेटों पर हमला करने !

दूसरा व्यक्ति (चकित होकर देखता है) क्या हुआ हुज़ूर ! कुछ बतलाइये भी तो ! यहाँ तो कोई नहीं दिखलाई देता !

बुद्धूमल (क्रोध में) अरे-यहाँ कौन दिखलाई दे सकता है। सब जानते हैं आनरेरी मजिस्ट्रेट का मकान है, किसी की हिमम्त पड़ सकती है ! धांध दूँगा धांध ! समझ क्या रखा है ?

तीसरा व्यक्ति (नम्रता से) हाँ, हुजूर के इकबाल को कौन पा सकता है। चोर डाकू की क्या बिसात है ! बड़ी बड़ी सनदें मिल चुकी हैं। सरकार ने हुज़ूर को पिछले साल ही खिताब की इनायत बख्शी है।

बुद्धूमल (हाथ का इशारा करके) अरे, तुम भी निरे गाव-दुम हो। चोर डाकू मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं। लेकिन कल के अखबार में देखा नहीं कि आनरेरी मजिस्ट्रेटों की जांच होने वाली है। उनके निकाले जाने की साजिशें हो रही हैं। हुँ !

दूसरा—अरे हाँ, हुज़ूर, इसकी तो बाजार में भी बड़ी गरम खबर है कि बेपढ़े और अंग्रेजी न जानने वाले अब आनरेरी मजिस्ट्रेट न रहने पायेंगे।

बुद्धूमल (ज़ोर से) हमें निकाल कौन सकता है ? किसी की कमाई हम लोग थोड़े ही खाते हैं। मुफ्ती काम लेना और ऊपर से धौंस !

दूसरा—हाँ, हुज़ूर, ये कांग्रेस वाले बड़े अजीब हैं। हुज़ूर, बड़ा भारी अनर्थ हो जायगा।

बुद्धूमल (समझा कर) मान लो मैं मूरख हूँ, पढ़ा लिखा नहीं हूँ। लेकिन आज तक कोई माई का लाल न मिला जो मेरा फैसला उलट देता) सारे कानून को फैसले में भर देता हूँ।

तीसरा—क्यों नहीं। हुजूर को कानूनी बातें जितनी आती हैं उतनी किसको आ सकती हैं ! (सब एक दूसरे की ओर देखते हैं)

बुद्धूमल—अरे, ये मुन्शी ससुरे फिर किस मर्ज की दवा हैं। हम अपना कीमती वक्त खराब करते हैं। घंटों मगजपच्ची करते हैं।

दूसरा—हाँ हुजूर, समुद्र-मंथन होता है तब अमृत निकलता है।

बुद्धूमल—हाँ और नहीं तो क्या ! मान लो मैं पढ़ा नहीं हूँ, इससे क्या ! मसल है कि अक्ल बड़ी कि भैंस ! मेरे बाप दादों ने अँग्रेजी का पढ़ना धर्म के खिलाफ समझ लिया था। मेरे पिता जी मरते वक्त कह गये थे कि बेटा, खबरदार अँग्रेजी के नजदीक न जाना ! नहीं तो बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी। (खांस कर) वाह, चले हैं निकालने। भले आदमी हों तो मेरा अब-तक जितना वक्त खराब हुआ है उसका मावजा दे दें तब जानूँ।

पहला (हाथ जोड़ कर) हाँ हुज़ूर, दें दें, दें दें ! जरूर दे दें ! (आश्चर्य से) अच्छा, तो सरकार अब मजिस्ट्रेट बनाये कौन जायेंगे ?

बुद्धूमल—अरे, बनाये जायेंगे जो, मैं सब समझता हूँ। घर में भूंजी भांग नहीं, अम्मा भुंजाने चलीं! वही लोग जिन्होंने अंग्रेजी जनम भर पढ़ी, फिर जो घर में बैठे अंडे देने लगे, और कौन! लें, फिर क्या है उलीचें दोनों हाथों से!

दूसरा—सुना है कांगरेस देश की बड़ी भलाई की बातें करने वाली है।

बुद्धूमल (जोर से) हाँ, हाँ भलाई करे, खूब करे। लेकिन हमारे इस हक को क्यों छीनने पर तुली है? जो कुछ भी हो, मैं तो हर्गिज नहीं मजिस्ट्रेटी छोड़ूंगा। चाहे जान चली जाय। उँहू, हर्गिज नहीं।

तीसरा—हाँ सरकार, मजिस्ट्रेटी तो आपका मौरूसी हक है। बाप दादों से यह चलन चली आ रही है।

दूसरा—आखिर सरकार! अगर कांग्रेस वाले आपको अलग करने ही पर तुल गये तो क्या कीजियेगा?

बुद्धूमल—हुँ, अहहहह, क्या कीजियेगा, यह तो मैंने पहले ही से सोच रखा है। मज़ा चखा दूंगा मजा?

पहला (आश्चर्य से) आखिर हम लोग भी तो सुनें सरकार! कैसे मजा चखाइयेगा?

बुद्धूमल—तुम लोगों के पेट में बात नहीं पचती। अपना गुर बता दूं तो सारे शहर में फैला दोगे।

तीसरा—वाह सरकार, आपही के भरोसे हम लोग अभी

तक जिन्दा हैं। यह आप क्या कहते हैं। आपके लिये जान हथेली पर लेकर चलने वाले हैं।

बुद्धूमल (मुस्करा कर) अरे वही असहयोग और सत्याग्रह! धूनी रमा दूंगा। अनशन करूँगा। मर जाऊँगा। थोड़ी सी जिन्दगी बाकी है। आखिर वक्त इन कांग्रेस वालों के नाम पर ही सही।

दूसरा (अपने साथियों की ओर देखकर) वाह, क्या सोचा है! रंग आ जायगा। एक अजीब गुल खिलेगा। लेकिन सरकार, इस काम के साथ धरना और बहिष्कार का काम और शामिल कर लीजिए।

बुद्धूमल (चकित होकर) भई वाह, इन दो बातों को तो मैं भूल ही गया था।

तीसरा—तो सरकार जल्दी कीजिए, फौरन एक सभा कर डालिए? और आनरेरी मजिस्ट्रेटों को अपने साथ शामिल कर लीजिये। फिर तो आप का पलड़ा भारी हो जायगा। एक से दो बहुत होते हैं।

बुद्धूमल (दोनों हाथ मसल कर) हाँ हाँ जरूर, मौक़ा अच्छा है। अच्छा तुम लोग जाओ और सब आनरेरी मजिस्ट्रेटों को इत्तिला कर आओ कि कल बुद्धूमल की बारादरी में आनरेरी मजिस्ट्रेटों का आम जलसा होगा। उसमें उनके हकूकों पर विचार होगा और प्रस्ताव पेश किया जायगा।

पहला—हाँ, हाँ हुजूर ! जरूर कीजिए। हम लोग आज रात दिन में यह काम कर डालेंगे।

बुद्धूमल—अच्छा तो जाओ तुम लोग, राम जाने कल तक क्या हो। कांग्रेस वाले तो डाकगाड़ी हैं। अपने राम मालगाड़ी बनकर चलेंगे तो कैसे बनेगा ?

दूसरा—नहीं हुजूर ! हम लोग हवाई जहाज़ की तरह चलेंगे। देखिये कल कैसा रंग आता है।

(बुद्धूमल प्रसन्न होते हैं। तीनों व्यक्ति उन्हें राम राम करके जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

स्थान—मालरोड

(बुद्धूमल के पास बैठने वाले खुशामदियों का वार्तालाप)

पहला—क्यों भई, बुद्धूमल की बुद्धि तो बड़ी तेज मालूम होती है ?

दूसरा—तेज नहीं पत्थर है। चले हैं सत्याग्रह और असहयोग करने ! मजा यह कि धरना और बहिष्कार का नाम सुनकर फूल उठे।

तीसरा—नहीं यार, अनशन भी करने वाले हैं।

दूसरा—बुद्धूमल का गागर सा पेट एक ही वक्त न खाने से बैठ जायगा। उठा जाता नहीं ! चलने-फिरने में चींटी को भी मात करते हैं। चले हैं अनशन करने !

पहला—वाह, रुपये वाले हैं रुपये वाले, क्या समझते हो। रुपये की ऐसी माया है कि जो न कर डाले सो थोड़ा है! फिर हम लोगों को तो उनसे फायदा ही होता रहता है।

तीसरा—हाँ भई, हम लोगों के लिये तो बुद्धूमल कुबेर है।

दूसरा—तुम लोगों के लिये कुबेर होंगे।

पहला—गुर तो खूब निकाला है। अगर लग गया तो मज आ जायगा।

दूसरा—गुर क्या उनके फरिश्तों का बताया हुआ है। अरे जिन कांगरेसियों को बुद्धूमल उलटा-सीधा सुनाया करते हैं, उनके दादा गुरू महात्मा गांधी का यह मंतर बताया हुआ है।, समझे!

(सब एक दूसरे की ओर आश्चर्य से देखते हैं।)

तीसरा—हाँ यार, कहते ठीक हो, मुझे वह दिन याद आता है तो सनसनी छा जाती है। नीम के पेड़ों में भी रुई पैदा होने लगी थी न! वही दिन हैं न!

दूसरा—हाँ हाँ, वही दिन! हमारी अंग्रेजी सरकार काँप गई थी।

पहला—भई कहते तो ठीक ही हो। लेकिन बुद्धूमल हैं होशियार, देखो तो अपने काम के लिये कैसी तरकीब सोच ली।

दूसरा—क्या खाक सोच लिया है! इससे कुछ होगा ही क्या! बुद्धूमल बुद्धू बनेंगे। रही सही इज्जत भी खोवेंगे।

पहला—वह एक नम्बर के इज्जतदार हैं। पुलिस को बुला कर तोप लगवा देंगे, सारी हरकत भूल जायगी।

दूसरा—तोप ! हुँ, तोप किसके बूते पर लगवा देंगे। बुद्धूमल के बाप दादों के तोप तलवारों के क्या कारखाने चलते थे, या इनकी उनके यहाँ ढलाई होती है।

तीसरा—नहीं नहीं, जानते हो एक चिट्ठी लिखने की देरी है।

दूसरा—भई, तुम लोगों से बहस करना व्यर्थ है। अब मैं जाता हूँ ! (जाने लगता है।)

तीसरा (हाथ पकड़ कर) आखिर तुम जाओगे कहाँ ?

दूसरा—तुम पूरब जाओ और मैं पश्चिम।

पहला—पश्चिम में कौन सी रोकड़ रखी है जो उसे बांधने जाओगे।

दूसरा—कल रोकड़, तोप, तलवार, गारद और फौज का मजा मिल जायगा।

(दोनों उसे पकड़ कर मिन्नत से पूछते हैं)

तीसरा—तनिक हम लोगों को भी बताते जाओ। आखिर क्या होगा ? हम तो उनसे वायदा कर चुके हैं !

दूसरा—मैं जा रहा हूँ अपने दादा भाई के पास। देखो, वह मकान में साईन बोर्ड टँगा है। (हाथ से दिखाता है)

पहला—आखिर हम लोगों पर तो कोई आफ़त न आएगी ?

दूसरा—नहीं नहीं, तनिक कायाकष्ट तो होगा ही, लेकिन जान जोखिम नहीं।

तीसरा—भैया, वह कौन सी जगह है ? क्या खुफिया पुलिस के रहने की जगह है ?

दूसरा—खुफिया नहीं बल्कि कांग्रेस साम्यवादी दल का दफ्तर है।

पहला—आखिर वहाँ जाकर क्या करोगे। क्या लड़ाई की तैयारी करोगे ?

दूसरा—राम राम ! महात्मा गांधी के भक्त होकर लड़ाई ! ज्यादा क्या कहूँ। कल मालूम हो जायगा !

(दोनों हाथ जोड़ते हैं)

पहला—भाई, हम लोगों पर रहम करना।

तीसरा—मुझे भी अपना साथी समझना।

दूसरा (आगे बढ़ता हुआ) जाकर कह देना, बुद्धूमल जरा होशियार हो जायं। (सब आश्चर्य से उसकी ओर देखते हैं। दूसरे व्यक्ति का कांगरेस साम्यवादो दल के दफ्तर में प्रवेश। दादा भाई बैठे अखबार पढ़ रहे हैं।)

दूसरा व्यक्ति—दादा भाई, वन्दे !

दादा भाई—अरे मनोहर, तुम इस वक्त कहां ? कहो बहुत दिन बाद दिखाई पड़े, मजे में तो हो !

मनोहर—मजा करना तो मेरा काम है लेकिन दादा, कांग्रेस के खिलाफ बातें सुनकर मुझसे रहा नहीं जाता !

दादा (सहम कर) आखिर क्या हुआ कहो भी तो।

मनोहर—सुनिये कल यहाँ के आनरेरी मजिस्ट्रेट एक सभा कर रहे हैं। बुद्धूमल उनके सरगना हैं। वे कहते हैं कि हम लोग सत्याग्रह करेंगे। देखें कैसे कांग्रेस वाले हमें मजिस्ट्रेटी से अलग कर सकते हैं ?

दादा—तो वहां क्या होगा ?

मनोहर—यही कि कांगरेस के खिलाफ प्रस्ताव पास करना। आपस में तू-तू, मैं-मैं।

दादा—अच्छा !

मनोहर (हाथ जोड़ कर) दादा, कल आप भी सभा में पहुँच जाइये तो बहुत अच्छा करें।

दादा—मैं इन सरकारी पटेबाज लोगों के दरबार में जाकर क्या करूंगा ?

मनोहर—आप पहुँच भर जायं, यही बहुत है; बस। (गिड़गिड़ाता और हाथ जोड़ता है) अच्छा दादा, मैं जाता हूँ, कल वहीं सभा में मिलूंगा।

(दादा अखबार पढ़ने लगते हैं, मनोहर वहां से चल देता है।)

तीसरा दृश्य

स्थान—बुद्धूमल का बंगला

(एक बड़े कमरे में कई आनरेरी मजिस्ट्रेट बैठे हैं। दुपल्ली टोपी, अचकन, फेल्ट कैप, साफा, अँगरखा, कुर्ता; उनका लिबास

हैं, कोई दांत खोदता है, कोई पान चबाता है। दोनों ओर कुर्सी लगी हैं। बीच की जगह खाली है। आगे की ओर मेज, उसके सामने दो कुर्सी। एक कुर्सी पर बुद्धूमल बैठे हैं। पास ही बुद्धूमल के घर की स्त्रियां भी पर्दे में बैठी हैं। दो चार पड़ोसिन भी हैं।)

बुद्धूमल—सज्जनो और बहनो, मुन्नी की मां को छोड़कर...

(कुछ काना फूसी होती है।)

एक मजिस्ट्रेट—यह मुन्नो की मां कौन हैं?

दूसरा (कान में) बुद्धूमल की पत्नी हैं।

तीसरा (चुपचाप) मुन्नो कौन है?

दूसरा (चुपके) बुद्धूमल की कन्या!

पहला—अच्छा तभी मुन्नी की मां को छोड़कर, दूसरों को बहनें कहा गया है।

(रूमाल लेकर मुसकुराते हैं।)

बुद्धूमल (क्रोध से) साहिबो, आप लोगों को एक खास मकसद से यहाँ बुलाया गया है। अब हम लोगों के मरने जीने का सवाल है। जरा सावधानी से सुनिये।

(कहिये कहिये की आवाज)

बुद्धूमल (खांसकर) कांगरेस का नाम आप लोगों ने सुना ही होगा। वह हम लोगों की लियाकत की जांच कर रही है। यह सरासर हमारा अपमान है। हम लोगों को एक स्वर से इसका विरोध करना चाहिये।

एक मजिस्ट्रेट (दुपल्ली टोपी लगाये दांत कुरेदते हुये) जरूर विरोध करना चाहिये । यह सरासर अपमान है । हम लोग इसे कैसे बरदास्त कर सकते हैं ।

दूसरा (चश्मे को रूमाल से पोंछते हुये) हर्गिज न बरदास्त करना चाहिये ।

तीसरा (कुर्सी से कुछ उठ कर) 'पायनियर' में जोर से छपवा देना चाहिये ।

चौथा—(हकला कर) लि-लि-लि-लि लीडर में लि-लि-लि-लिखना चाहिये ।

बुद्धूमल—(हाथ ऊठा कर दिलासा देते हुये,) भाइयो ! घबराइये नहीं । मैंने वह सेलूशन निकाला है कि जिससे अंग्रेजी सरकार घबरा गई थी ।

एक (आश्चर्य से) वह क्या ?

बुद्धूमल—हम लोग असहयोग और सत्याग्रह करेंगे । फिर देखिये कैसा मजा आता है । हमारा साथ आप लोग देंगे न ?

चौथा—जरूर देंगे, अवश्य देंगे, मर मिटेगें, बलिदान हो जायेंगे ।

दूसरा--किन्तु कांग्रेस ने तो अब सत्याग्रह बन्द कर दिया है ।

बुद्धूमल--हमें कांगरेस से क्या सरोकार ! लोहा लोहे को काटता है ! कुत्ता कुत्ते का दुश्मन होता है । कांगरेस ने जिस

सत्याग्रह को चलाया वही सत्याग्रह अब उनके लिए विष-कन्या हो जायगी।

चौथा--भई वाह, क्या सोचा है, हो बड़े बुद्धिमान! यह सेलूशन तो गिरफ्तार कर लेगा।

8 पाँचवाँ--गिरफ्तार ही नहीं, कचूमर निकाल देगा। सत्याग्रह की बदौलत अगर कांग्रेस का राज हो सकता है तो क्या हम लोग अपनी मजिस्ट्रेटी नहीं बचा सकते?

दूसरा—क्यों नहीं! जरूर होगा।

बुद्धूमल--अच्छा मैं एक प्रस्ताव रखता हूँ। आप लोग उसको एक स्वर से पास कर दीजिये। कल हो मैं इसे अखबारों में छपवा दूँगा और अल्टिमेटम देकर सतियागिरा को शुरू कर दिया जायगा।

9 छठा—अच्छा, वह प्रस्ताव क्या है? जरा जल्दी पढ़िये।

(एकाएक सभा में एक ओर मनोहर पन्द्रह नवयुवकों को लिये हुए सामने दिखाई देता है। उसके साथ एक वृद्ध व्यक्ति भी है। नवयुवक सब खद्दर-पोश हैं। 'महात्मा गांधी की जय' की ध्वनि से सभा गूँज उठती है। सब के सब भौंचक से उन लोगों को देखने लगते हैं। एकाएक बुद्धूमल का पारा गरम हो जाता है।

बुद्धूमल—अबे मनोहरा, तू बागियों में मिल गया? बेईमान कहीं का!

10 सातवाँ (बैठा हुआ मजिस्ट्रेट दूसरे मजिस्ट्रेट से) गुसाई जी ने ठीक हो लिखा है—

सरबस खाइ भोग करि नाना।
समर भूमि भा दुर्लभ प्राना॥

(एकाएक महात्मा गांधी के जय के नारे लगते हैं। बहुत से मजिस्टे्रट रफूचक्कर हो जाते हैं। अनेक बैठे रहते हैं। साम्यवादी सभा में आकर शामिल हो जाते हैं। एकाएक मनोहर वृद्ध व्यक्ति दादा गुरू की ओर देख कर कहता है)

मनोहर—मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आज के सभा के सभापति दादा गुरु बनाये जायें। (चारों ओर से नवयुवकों द्वारा समर्थन होता है)

बुद्धूमल (कुपित होकर) तुम लोग कौन होते हो इस सभा में हुल्लड़ मचाने वाले ? जानते नहीं हो यह प्राइवेट हाउस है। भागो; नहीं पुलीस को बुलाता हूँ।

मनोहर—अरे रायसाहब, अभी उर्द-अरहर का भाव मालूम होता है। ज़रा ठहर जाइये।

(एकाएक बुद्धूमल टेलीफोन करने के लिये कोठी की ओर बढ़ते हैं। एक स्वयंसेवक उनका पैर पकड़ कर लटक जाता है। बुद्धूमल बहुत बढ़ने की कोशिश करते हैं किन्तु वह नहीं छोड़ता। यह घटना देख कर और भी मजिस्ट्रेट वहाँ से रफूचक्कर होते हैं)

मनोहर (सभापति की कुर्सी के पास पहुँच कर) दादा गुरू, अब आप पधारिये। सभा की कार्रवाई शुरू हो।

(दादा गुरू सभापति की कुर्सी पर जा बैठते हैं। मनोहर प्रस्ताव पढ़ता है)

मनोहर—यह के सभा यहाँ के सरकारी हुक्काम आनरेरी मजिस्ट्रेटों को आगाह करती है कि वे अपना पुराना रवैया छोड़ दें। गरीबों को जिस तरह वे अब तक तकलीफ़ देते थे, लम्बे-लम्बे जुर्माने ठोकते थे, वह दिन अब भूल जायें। अब काँग्रेस सरकार का राज है। साथ ही यह सभा काँग्रेस सरकार से अनुरोध करती है कि पुराने खदूस मजिस्ट्रेटों को हटा दिया जाय, और नये पढ़े-लिखे, हृदयवान काम से दिल-चस्पी रखने वाले और सिर्फ़ रुआब पर मजिस्ट्रेटी न करने वाले ही लोग मजिस्ट्रेट बनाये जायें।

एक स्वयं सेवक—मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।

दूसरा—मैं इस प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूँ।

सभापति—सब लोगों को यह प्रस्ताव मंजूर हैं।

(हाँ-हाँ की आवाज़ आती है। प्रस्ताव पास हो जाता है। सब के सब अपने अपने घर आते हैं।

चौथा दृश्य

स्थान—लाला बुद्धूमल का कमरा।

बुद्धूमल (खाट पर लेटे हुए) अरे बापरे, मार डाला सालोंने। अरे बाप रे ? अब कहीं का नहीं रहा। खुशामद में

जिन्दगी बीती। बुढ़ाई में इन हरामजादों ने ले डाला। हे भगवान्! (कोसता है)

(एकाएक काँखना सुनकर उनकी स्त्री का प्रवेश।)

स्त्री—आज तुम्हें क्या हो गया है? आखिर बात क्या है?

बुद्धूमल—तुम क्या पूँछती हो? बदमाश मनोहर की सारी बदमाशी। गया ससुरा सोशलिस्टों को बटार लाया।

स्त्री—किसको बटार लाया। अरे मनोहर!

बुद्धूमल—हाँ हाँ, मनोहर बदमाश। सोशलिस्टों को हुल्लड़ मचाने के लिए लाया था।

स्त्री—सो सही·········क्या कहा? यह कौन है।

बुद्धूमल—अरे तुम तो और परेशान करती हो। तुम्हें आनरेरी मजिस्ट्रेट की बीबी न होना चाहिये था। मैं सोशलिस्ट कह रहा हूँ तुम सु-सु-सु कर रही हो।

स्त्री (जरा बिगड़ कर) अरे इसमें तुनकने की क्या बात है। अगर मेरी समझ में बात नहीं आई तो समझाओ तो सही।

बद्धूमल—अच्छा लो सुनो। सोशलिस्ट का मतलब, न तो रामायन है न प्रेमसागर। न तोता-मैना का क़िस्सा है, न सुख सागर है, और न चन्द्रकांता है। यह है सोशलिस्ट।

स्त्री—आखिर हैं यह कौन?

बुद्धूमल—फिर वही बात! यह सोशलिस्ट है सोशलिस्ट!

स्त्री—अजी मतलब बताओ भी। यह हैं कौन?

बुद्धूमल—हैं कोई नहीं। आदमी वह भी हैं। मगर ज़रा ऊधमी ज्यादा हैं। काँग्रेस वालों ने एक हुल्लड़बाज़ पार्टी बनाई है, उसका नाम रख दिया है सोशलिस्ट।

स्त्री—इसका असली मतलब क्या है?

बुद्धूमल—मतलब-वतलब मैं नहीं जानता। बस जो मतलब है उसे बता दिया।

स्त्री—खैर, तब क्या हुआ?

बुद्धूमल—हुआ क्या खूब हुल्लड़ मचाया। हम लोगों का सभा में ठहरना मुश्किल हो गया।

स्त्री—राम राम, बड़ा बुरा हुआ।

(एकाएक अखबार वाला अखबार दे जाता है। बुद्धूमल गौर से पढ़ते हैं)

बुद्धूमल (आश्चर्य से) अरे यह छप गया? अरे यह मैं क्या देख रहा हूँ।

स्त्री—क्या कुछ अखबार में छप गया है?

बुद्धूमल—हाँ हाँ और क्या मेरे सर में। देखो, मैं नहीं जानता था कि अखबार वाले इतने निकम्मे होते हैं। गलत खबरों का इस तरह विज्ञापन करते हैं।

स्त्री—खैर, अब तो छप हो गया। जाने भी दो, पढ़ो तो क्या छपा है।

बुद्धूमल—वाह जाने कैसे दूँगा। मैं इसके ऐडोटर के ऊपर मानहानि का मुकदमा चलाऊँगा। इसने मुझे समझ क्या रखा

है। कांग्रेस सरकार हो गई है तो क्या किसी भले आदमी को इज्जत बिगाड़ेंगे ?

स्त्री—अच्छा, पढ़ो तो क्या लिखा है ?

बुद्धूमल—आनरेरी मजिस्ट्रेटों की सभा में हुल्लड़ ! सोशलिस्टों ने कब्जा कर लिया। (क्रोध में) धूर्त, झूठा, बेईमान अखबार वाला। (अखबार जमीन पर पटक देता है)

स्त्री—और भी कुछ लिखा है कि नहीं।

बुद्धूमल—बस ज्यादा बात मत करो। लिखने दो बदमाशों को। मुझे इसकी क्या परवाह है। मैं कल ही वकील के मार्फत नोटिस दिलवाता हूँ। मुकदमा चलाऊँगा। तब इन बदमाशों और अखबार वाले को मालूम होगा कि किसी आनरेरी मजिस्टेट की इज्जत बिगाड़ने का क्या नतीजा होता है ?

(बुद्धूमल कपड़ा पहन कर मूँछों पर तांव देता हुआ। बाहर निकल खड़ा होता है। उसकी स्त्री आश्चर्य से उसे देखती रह जाती है

———



छात्र-हितकारी पुस्तकमाला

के प्रकाशन

सदाचार, एवं जीवन सुधार सम्बन्धी पुस्तकें

(१) ब्रह्मचर्य ही जीवन है	[स्वामी शिवानन्द]	।।।)
(२) सफलता की कुंजी	[स्वामी रामतीर्थ]	।)
(३) ईश्वरीय बोध	[रामकृष्ण परमहंस]	।।।)
(४) मनुष्य जीवन की उपयोगिता	[केदारनाथ गुप्त]	।।=)
(५) धर्म पथ	[महात्मागांधी]	।।।)
[६) भाग्य निर्माण	[ठा० कल्याणसिंह शेखावत]	१।।।)
(७) वेदान्त धर्म	[स्वामी विवेकानन्द]	१।)
(८) अहिंसाव्रत	[म० गांधी]	।।।)
(९) भिक्षुके पत्र	[आनंद कौसल्यायन]	।।।)

स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी

(१) हम सौ वर्ष कैसे जीवें	[केदारनाथ गुप्त]	१)
(२) मनुष्य शरीर की श्रेष्ठता	[देवीप्रसाद खत्री]	।=)
(३) स्वास्थ्य और व्यायाम	[केशव कुमार ठाकुर]	१।।)
(४) स्वास्थ्य और जलचिकित्सा	[केदारनाथ गुप्त]	१।।)
(५) दूधही अमृत है	[हनुमान प्रसाद गोयल]	१।।)
(६) आदर्श भोजन	[लक्ष्मीनारायण चौधरी]	।।।)
(७) फल उनके गुण तथा उपयोग	[केशव कुमार ठाकुर]	१।)

काव्य

(१) कवितावली रामायण	[गोस्वामी तुलसीदास]	१।।)
(२) मदिरा	[तेजनारायण काक]	१)

(३) अपराजिता [अंचल] २)
(४) कुसुम कुंज [ठा० गुरुभक्त सिंह 'भक्त'] ।=)
(५) युगारंभ [गणेशपाण्डेय] १॥)

समालोचना व निबंध

(१) गुप्तजी की काव्यधारा ['गिरीश'] २)
(२) कविप्रसाद की काव्य साधना [रामनाथ 'सुमन'] २॥)
(३) काव्य-कलना [गंगाप्रसाद पांडेय] १)
(४) साहित्य सर्जना [इलाचंद्र जोशी] १)
(५) राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा (मोतीलाल मेनारिया) २॥)

यात्रा, खोज व आविष्कार सम्बन्धी

(१) वैज्ञानिक कहानियां [टाल्स्टाय] ।)
(२) पृथ्वी के अन्वेषण की कथायें [जगपति चतुर्वेदी] १)
(३) मेरी तिब्बत यात्रा [राहुल सांकृत्यायन] १॥)
(४) विज्ञान के महारथी [जगपति चतुर्वेदी] १।)

नाटक और प्रहसन

(१) भग्नावशेष [कुमार हृदय] ॥=)
(२) मुद्रिका [सद्‌गुरुशरण अवस्थी] ॥=)
(३) हजामत [ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल'] १।)
(४) पढ़ो और हँसो [जहूर बख्श] ॥)

कहानी एवं जीवन-चित्रण

(१) वीरों की सच्ची कहानियां [जहूरबख्श] ॥=)
(२) आहुतियां [गणेश पांडेय] ॥।)
(३) जगमगाते हीरे [विद्याभास्कर शुक्ल] १)
(४) बौद्ध कहानियां [व्यथित हृदय] १)
(५) पौराणिक महापुरुष [केदारनाथ गुप्त] ॥।)

गल्प व उपन्यास

स्त्रियोपयोगी

राजनैतिक

सचित्र, मनोरञ्जक, शिक्षाप्रद, सरल, रोचक, जीवन को ऊँचा उठानेवाली सस्ती पुस्तकें

छात्र-हितकारी पुस्तकमाला ने छोटे-छोटे बालकों को आ... महापुरुष बनाने और सुखमय जीवन बिताने के लिए महापुरुषों ... सरल जीवनियाँ बच्चों ही के लायक, मनोरञ्जक भाषा में, मोटे टा... में, निकालने का निश्चय किया है। नीचे लिखी पुस्तकें प्रकाशित होगई हैं। प्रत्येक का मूल्य ।) है।

१—श्रीकृष्ण
२—महात्मा बुद्ध
३—रानडे
४—अकबर
५—महाराणा प्रताप
६—शिवाजी
७—स्वामी दयानन्द
८—लो० तिलक
९—जे० एन० ताता
१०—विद्यासागर
११—स्वामी विवेकानन्द
१२—गुरु गोविन्दसिंह
१३—वीर दुर्गादास
१४—स्वामी रामतीर्थ
१५—सम्राट अशोक
१६—महाराज पृथ्वीराज
१७—श्री...
१८—म...
१९—रा...
२०—मह...
२१—स्वा...
२२—नेपोलियन
२३—बा० राजेन्द्रप्रसाद
२४—सी० आर० दास
२५—गुरु नानक
२६—महाराणा सांगा
२७—पं० मोतीलाल नेहरू
२८—पं० जवाहरलाल नेहरू
२९—श्रीमती कमला नेहरू
३०—मीराबाई
३१—इब्राहिम लिंकन
३२—अहिल्याबाई
३३—मुसोलिनी
३४—हिटलर
३५—सुभाषचन्द्र बोस
३६—राजा राममोहनराय
३७—लाला लाजपत राय
३८—महात्मा गाँधी
३९—महामना मालवीय जी
४०—जगदीशचन्द्र बोस
४१—महारानी लक्ष्मीबाई
४२—महात्मा मेजिनी
४३—महात्मा लेनिन
४४—महाराज छत्रसाल
४५—अब्दुल गफ्फार ख़ाँ
४६—मुस्तफा कमालपाशा



मैनेजर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग